छायावाद और रहस्यवाद

का

रहस्य

संपादक
डॉ० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री एम्० ए०, पी-एच्० डी०
प्रो० छंगालाल मालवीय एम्० ए०
प्रो० कामेश्वर शर्मा एम्० ए०

—— ० ——

प्राप्ति-स्थान—
राज-प्रकाशन
मछुआ-टोली
पटना—४

प्रथम बार] १९५५ [मूल्य ३)

प्रकाशक
राज-प्रकाशन
मछुआ-टोली
पटना—४

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ
२. भारती (भाषा)-भवन, ३८१०, चर्खेवालाँ, दिल्ली

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

ये दोनो शब्द तर्क-संगत परिभाषा से परे हैं। पाठक की यह अभिलाषा होती है कि उसके सम्मुख एक निश्चित परिभाषा हो, जिसकी तुला पर तौलकर वह यह जान सके कि अमुक कविता रहस्यवाद या छायावाद की है, पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि उसकी जिज्ञासा पूर्ण नहीं हो सकती। कुछ विद्वानों ने इन शब्दों को परिभाषा के पींजड़े में बंद करने की चेष्टा की और कोष द्वारा इनके अर्थों को नियत एवं निश्चित करने का प्रयास भी किया, पर परिणाम-स्वरूप उनको हताश होना पड़ा। वह लिखते हैं—"अँगरेजी में एक शब्द है Mystic पंडित मथुराप्रसाद मिश्र ने अपने त्रैभाषिक कोष में उसका अर्थ लिखा है—गूढ़ार्थ, गुह्य, गोप्य और रहस्य। रवींद्रनाथ की वह नए ढंग की कविता इसी 'मिस्टिक' शब्द के अर्थ का द्योतक है। इसे कोई रहस्यमय कहता है, कोई गूढ़ार्थ-बोधक कहता है और कोई छायावाद की अनुगामिनी कहता है। छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता।"

अंततोगत्वा उन्होंने रचनाओं को देखकर लक्षण निर्धारित करने का भी प्रयास किया, पर उसमें भी विफल होकर लिखते हैं—"आजकल तो लोग रहस्यमयी या छाया-मूलक कविता लिखते हैं। उनकी कविता से तो उन लोगों की पद्य-रचना अच्छी होती है, जो देश-प्रेम पर अपनी लेखनी चलाते या 'चलो वीर पटुआ खाली' की तरह की पंक्तियों की सृष्टि

करते हैं। उनकी कविता में और गुण भले ही न हों, पर उनका मतलब तो समझ में आता है। लेकिन छायावादियों की रचना तो कभी-कभी समझ में नहीं आती।"

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की स्पष्टवादिता और निर्भीकता में संदेह नहीं है। यदि किसी रचना का तात्पर्य उनकी समझ में नहीं आया, तो दूसरों के स्वर में स्वर मिलाकर उन्होंने उसकी प्रशंसा भी नहीं की, किंतु रोष में आकर 'छायावादी छोकड़े' आदि कहना अन्याय और अनुचित था। रहस्यवाद-शब्द का संबंध दर्शन से है। यह सारी सृष्टि रहस्यों से परिपूर्ण है। आदि काल से मनुष्य उन्हें देखकर आश्चर्यान्वित और चकित होता आ रहा है। विचारशील व्यक्ति उन रहस्यों के उद्घाटन का प्रयत्न करते हैं। वे ही दार्शनिक, वैज्ञानिक या कवि कहलाते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि दार्शनिक तर्क के आधार पर चलते हैं, वैज्ञानिक तर्क और प्रयोग का आश्रय लेते हैं, पर कवि भावुकता और अनुभूति के सहारे चलते हैं। कल्पना का प्रयोग तीनो ही करते हैं, लेकिन कवि-कल्पना दार्शनिक एवं वैज्ञानिक की कल्पना से अधिक मनोरम तथा मर्म-भेदी होती है।

रहस्योद्घाटन की प्रवृत्ति हमारे साहित्य-में अति प्राचीन काल से दिखाई देती है। वेद, उपनिषद्, गीता एवं कुछ पुराण इसके प्रमाण हैं। आत्मा-परमात्मा का संबंध, जीव और जगत् का संबंध आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर आदि काल से विवेचन होता आ रहा है, जिसका निष्कर्ष हमारे शास्त्रों

तथा अन्य ग्रंथों में दिया है। अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि इसी चिंतन के परिणाम हैं, जिनकी लोकमान्यता भारतीय मस्तक को गौरवान्वित करती है। हिंदी के अनेक कवियों ने इनका आश्रय लेकर काव्य की रचना की। वे प्रतिभाशील थे। उन्होंने दार्शनिक सिद्धांतों का अनुसरण आँख मूँदकर नहीं किया, प्रत्युत उनको काव्य के साँचे में ढालकर अपनी मौलिकता और अनुभूति से एक नया और मनोरम रूप दिया। ऐसे ही कवि रहस्यवादी कहलाए। कबीर और जायसी इनके उदाहरण हैं। इनकी रहस्यवादिता पर सूफ़ी सिद्धांत की भी छाप है।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ-काल में इस प्रकार की कविता को एक नयी प्रेरणा मिली। श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि प्रकाशित हुई। उनके काव्य में एक विचित्र समन्वय है। वे बहुज्ञ थे, प्रतिभावान थे और अनेक दार्शनिक सिद्धांतों से भलीभाँति परिचित थे। स्वयं भी किसी दार्शनिक से कम न थे। ऐसी स्थिति में उनकी रचना एक विलक्षण कौतूहल एवं समाधान लेकर प्रकट हुई। शिक्षित समुदाय चकित हो गया। श्रीरवींद्रनाथ को नोबुल पुरस्कार मिला, और हमारे हिंदी-कवियों को एक नयी प्रेरणा। वे भी आगे बढ़े श्रीसुमित्रानंदन पंत को प्रकृति में परमात्मा की शक्ति दिखाई पड़ी। महाकवि 'निराला' शब्द ब्रह्म के अनहद नाद का स्वर सुनाने लगे और 'प्रसाद' की करुण पुकार परदे के उस पार पहुँचने लगी। इन कवियों की भाषा और भावाभिव्यंजन शैली नूतन थी। प्राचीन पद्धति के अनुयायियों को वह अच्छी न लगी। वे इनकी रचनाओं को

बेतुकी, छंद-हीन और निरर्थक कहकर विरोध करने लगे। पर इस त्रिमूर्ति ने उनकी तिल-भर भी परवा न की, प्रत्युत दूने उत्साह से अपना सिक्का जमाती गई। विरोधियों को दबना पड़ा, और रहस्यवाद की प्रतिष्ठा स्थापित हो गई।

जहाँ रहस्यवाद को इतना गौरव प्राप्त हुआ, वहाँ एक भूल भी हुई। कुछ आलोचकों ने इस काव्यगत रहस्यवाद को दार्शनिक रहस्यवाद से मिलाने का प्रयत्न किया। उन्होंने साधक के लक्षण उसके अभ्यास की अवस्थाएँ और साध्य की विशेषताओं का वर्णन करके कवियों को उसी कोटि में मिला दिया। परिणाम यह हुआ कि रहस्यवाद रहस्य-पूर्ण हो गया। कहाँ रहस्यवादी दार्शनिक जो संसार से विरक्त एवं आध्यात्मिक चिंतन में लीन रहनेवाला व्यक्ति और कहाँ कवि जिनका यथा-तथा जीवन सबको विदित है, पाठकों को इनमें संगीत न दिखाई पड़ी। वे चकित हो गए और जहाँ-तहाँ रहस्यवाद के नाम पर उनका उपहास करने लगे। मान केवल उनको ही मिला, जो सत्यतः विचारशील, गंभीर और उदार थे।

द्विवेदी-युग में कविता इतिवृत्तात्मक हो गई थी। सीधा-सच्चा वर्णन उसका आदर्श था। पद्य भी गद्य ही प्रतीत होता था। सुकुमार उक्तियों एवं कल्पना का प्रायः अभाव था। नीति, सदाचार और देश की दुर्दशा का वर्णन अधिक प्रचलित था। जनता ऐसी कविता से ऊब गई थी। अतः कविता ने अभिव्यक्ति का एक नया रूप धारण किया, जो छायावाद के नाम से स्वीकृत हुआ। इस पद्धति के अनुसार बाह्य एवं स्थूल-

वर्णन से भिन्न वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी। इसमें हृदय की सूक्ष्म अंतर्वृत्तियों का मधुर, सरस तथा कला-पूर्ण चित्रण रहता है। ऐसे चित्रण के लिये प्रचलित पदयोजना से काम नहीं चल सकता। अतः कवियों ने नए शब्द, नया वाक्य और नवीन शैली का प्रयोग किया। फिर भी वे शब्द उनकी आंतरिक अनुभूतियों को भली भाँति प्रकट न कर सके। वे हृदय के अधखुले द्वार रहे, जिनसे कवि-हृदय की कुछ झलक मिली और कुछ पाठक को अपनी ओर से कल्पित करना पड़ा। छायावादी कवि अपने विषय को स्पष्ट रूप से रखने में संकोच करता है। वह प्रतीक का सहारा लेता है और ध्वन्यात्मकता तथा लाक्षणिकता से अपने भाव को प्रकट करता है। इसीलिये उसकी कविता कुछ दुरूह एवं दुर्बोध हो जाती है, पर जो सहृदय हैं, उनके हृदय पर अपनी छाप जमा लेती है। वे उसके एक एक शब्द और पद-विन्यास पर मुग्ध हो जाते हैं, और जितना ही उन पर विचार करते हैं, उतना ही उनको आंतरिक आनंद अनुभूत होती है।

प्रस्तुत ग्रंथ में इन दोनो गंभीर विषयों पर विविध लेख एकत्रित किए गए हैं। आशा है, ये विषय को सुबोध बनाने में सहायक होंगे।

डॉ० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी
प्रो० छंगालाल मालवीय
प्रो० कामेश्वर शर्मा

लेख-सूची

छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य

छायावाद

(१)

'सरस्वती' में किन्हीं सुकवि-किंकरजी ने 'आजकल के हिंदी-कवि और कविता'-शीर्षक एक लेख छपाया था। वही लेख "आज' की भी तीन संख्याओं में उद्धृत किया गया था। इस लेख के उत्तर में मेरे मित्र श्रीकृष्णदेवप्रसादजी गौड़ ने "छायावाद की छानबीन'-नामक एक लेख 'माधुरी' में लिखा था। सुकवि-किंकरजी के लेख में हमारे गौड़जी विद्वत्ता, काव्य-मर्मज्ञता, बुद्धिमत्ता, एकदेशीयता तथा पक्षपात पाते हैं। पता नहीं, गौड़जी के लेख में सुकवि-किंकरजी क्या पाते हैं। उक्त दोनो लेख पढ़ने से मेरा हृदय आनंद से नाच उठा। इन लेखों से स्पष्ट मालूम होता है कि हिंदी-साहित्य का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस मतभेद से हिंदी-साहित्य का उपकार ही होगा। दोनो लेखों से स्पष्ट है कि बाबू श्यामसुंदरदासजी भी छायावादी कवियों के विरुद्ध हैं। सुकवि-किंकरजी भी लेख-शैली से कोई प्रसिद्ध लेखक ही जान पड़ते हैं।

सुकवि-किंकरजी अपने लेख में लिखते हैं—"एक बात और भी है। यदि ये लोग अपने ही लिये कविता करते हैं तो अपनी कविताओं का प्रकाशन क्यों करते हैं? प्रकाशन भी कैसा? मनोहर टाइपों में, बहुमूल्य काग़ज़ पर, अनोखे-अनोखे चित्रों

से सुसज्जित टेढ़ी-मेढ़ी और ऊँची-नीची पंक्तियों में, रंग-बिरंगे बेल-बूटों से अलंकृत। यह इतना ठाट-बाट—यह इतना आडंबर—दूसरों ही को रिझाने के लिये हो सकता है, अपनी आत्मा की तृप्ति के लिये नहीं। परंतु सत्कवि के लिये इस आयोजन की क्या आवश्यकता है।" सुकवि-किंकरजी की इन पंक्तियों से पता चलता है कि उनके पास किसी ने उक्त प्रकार की कोई कविता की पुस्तक भेजी है। सुकवि-किंकरजी की इन पंक्तियों को पढ़कर मैं सोचने लगा, हाल में ऐसी कौन पुस्तक छपी है? ध्यान में आया—'पल्लव'।

एक दूसरे स्थान पर सुकवि-किंकरजी ने लिखा है—"यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि दूसरों को प्रसन्न करने के लिये कविता-रचना नहीं करते। वे अपनी ही मनस्तुष्टि के लिये कविता लिखते हैं। इस पर प्रश्न हो सकता है कि फिर वे दूसरों से अपनी कविता की समालोचना के अभिलाषी क्यों होते हैं?"

सुकवि-किंकरजी के इस अंश से यही मालूम होता है कि 'पल्लव' के कवि—श्रीसुमित्रानंदनजी पंत—ने इनके पास उसकी एक प्रति समालोचना के लिये भेजी थी। परंतु पाठकों को भली भाँति स्मरण रखना चाहिए कि ये सब बातें मैं इन अंशों के आधार पर ही लिख रहा हूँ। हाँ, तो सुकवि-किंकरजी ने प्रकट रूप से उसकी समालोचना नहीं की। श्रीसुमित्रानंदनजी पंत के समालोचना की अभिलाषा करने से प्रतीत होता है कि सुकवि-किंकरजी हिंदी के केवल प्रसिद्ध लेखक ही नहीं, किंतु एक उद्भट समालोचक भी हैं। इधर श्यामसुंदरदासजी भी हिंदी के स्तंभ ही हैं। इन दोनो धुरंधरों की अध्यक्षता तथा नेतृत्व में ईश्वर करे, छायावाद की कड़ी समालोचना हो। तभी

'छायावादी'-नामधारी कवियों की आँखें खुलेंगी, और तभी हिंदी-भाषा का कल्याण होगा।

मैं पहले ही यह कह देना अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूँ कि इन पंक्तियों का लेखक न तो कवि है और न उसके जीवन का अधिक समय कविता के अध्ययन ही में बीता है। परंतु मतभेद की दशा में प्रत्येक व्यक्ति का अपनी-अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रकाशित कर देना बहुत ही आवश्यक है। मैं पक्षपात-रहित होकर छायावाद के प्रश्न पर विचार करूँगा। मैं सत्य का तथा प्रकट रूप से कहने का पक्षपाती हूँ। इसी कारण सुकवि-किंकरजी का यह छद्म-वेश नहीं पसंद करता। मेरी राय में सुकवि-किंकरजी को अपना नाम प्रकट कर देना चाहिए था। मेरा विचार है कि सत्य के पक्ष में समालोचकों को गाली खाने के लिये तैयार रहना चाहिए। सत्साहित्य की वृद्धि के लिये स्पष्टवादिता की अत्यंत अधिक आवश्यकता है, चाहे उसे कोई बुरा माने या अच्छा। यदि सुकवि-किंकरजी को 'पल्लव' (यदि मेरा अनुमान सत्य है) अच्छा नहीं लगा, तो प्रकट रूप से उसका विरोध करना चाहिए था। मुझे कृष्णदेवप्रसादजी गौड़ तथा सुकवि-किंकरजी के लेख, रहस्य-वाद-संबंधी उस विवाद का स्मरण दिलाते हैं, जिसका सूत्रपात कुस्तुंतुनिया (Constantinople) में हुआ था। रहस्यवाद-संबंधी यह विवाद संसार के रहस्यवाद के इतिहास में बड़ा ही विचित्र है। सन् ५३३ ई० का समय था। कुस्तुंतुनिया में एक बड़ी भारी धार्मिक सभा हो रही थी। इस सभा में धार्मिक विषय पर मतभेद उठ खड़ा हुआ; दो दल हो गए। एक दल का नेता इफ़ेसस (Ephesus) का बिशप था। इसका नाम था हिपेशियस (Hypatius)। दूसरे दल का नेता सेवेरस था।

यही सेवेरस एंटीओच (Antioch) का मुखिया था। सेवेरस ने अपने पक्ष में डायोनिसियस (Dionysius) के लेखों का प्रमाण दिया। परंतु हिपेशियस बिशप ने इन प्रमाणों को मिथ्या कहकर टाल दिया। उसी समय से डायोनिसियस के लेखों के प्रति सब लोगों की उत्सुकता बढ़ने लगी। धीरे-धीरे डायोनिसियस के रहस्यवादात्मक लेखों का प्रचार सब लोगों में बहुत हो गया। पहले तो ईसाइयों ने इन लेखों की निंदा की, इस रहस्यवाद को असत्य कहा, नाक-भौं सिकोड़ी; परंतु अंत में इसका प्रचार ईसाइयों में भी होने लगा। सन् ५८० ई० में, इस संबंध में, अलेक्ज़ेंड्रिया (Alexandria) में, इन लोगों के बारे में ख़ूब चर्चा हुई। यहाँ तक कि पोप महान् ग्रीगरी (Pope Gregory the Great) ने भी इसके संबंध में ख़ूब विचार किया। सन् ६४९ ई० में फिर एक बड़ी भारी सभा हुई। उस सभा में डायोनिसियस के लेखों के बारे में ख़ूब वाद-विवाद हुआ। आठवीं शताब्दी में, फ़्रांस में, जब डायोनिसियस के लेखों का प्रचार हुआ, तब फ़्रांसवाले कहने लगे कि फ़्रांस-देश के निवासी सेंट डेनिस ने ही डायोनिसियस के नाम से उन्हें लिखा है।

डायोनिसियस का रहस्यवाद क्या है, उसका प्रचार योरप में कैसे हुआ, संसार के रहस्यवाद के इतिहास में उसका क्या स्थान है, ये बातें मैं अपने एक दूसरे स्वतंत्र लेख में लिखूँगा।

❀ ❀ ❀

मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि सुकवि-किंकरजी ने अपने लेख में किन-किन कवियों की कविता उद्धृत की है। परंतु लेख के कई अंशों से पता चलता है कि आपका लक्ष्य श्रीसुमित्रानंदनजी पंत की कविता अवश्य ही है। सुकवि किंकरजी के निम्न-

लिखित अंश से यह अनुमान किया जा सकता है—"पर छायावादियों की रचना तो कभी-कभी समझ में नहीं आती। ये लोग बहुधा बड़े ही विलक्षण छंदों या वृत्तों का भी प्रयोग करते हैं। कोई चौपदे लिखते हैं, कोई छपदे, कोई ग्यारहपदे, कोई तेरहपदे! किसी की चार सतरें गज़-गज़-भर लंबी, तो दो सतरें दो-ही-दो अंगुल की! फिर ये लोग बेतुकी पद्यावली भी लिखने की बहुधा कृपा करते हैं। इस दशा में इनकी रचना एक अजीब गोरखधंधा हो जाती है। न ये शास्त्र की आज्ञा के क़ायल, न ये पूर्ववर्ती कवियों की प्रणाली के अनुवर्ती, न ये सत्समालोचकों के परामर्श की परवा करनेवाले। इनका मूल मंत्र है—हम चुनीं दीगरे नेस्त। इस हमादानी को दूर करने का क्या इलाज हो सकता है, कुछ समझ में नहीं आता।"

जब सुकवि-किंकरजी गज़, फ़ुट और इंच लेकर कविता की नाप-जोख करने लगते हैं, तो पता चलता है कि आपका अभिप्राय श्रीनिरालाजी से है। श्रीकृष्णदेवप्रसादजी गौड़ ने वर्तमान छायावादी कवियों में निरालाजी और जयशंकर-प्रसादजी का भी नाम लिया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त महानुभावों की सम्मति में इन लेखों का संबंध श्रीसुमित्रानंदनजी पंत, श्रीनिरालाजी तथा श्रीजयशंकर-प्रसादजी से है, और ये लोग वर्तमान छायावादी कवि हैं। मैं अभी इस प्रश्न पर विचार नहीं करना चाहता कि छायावाद से इन कवियों का क्या संबंध है। परंतु इतना तो मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि ये तीनो ही कवि हिंदी-कविता-गगन के उज्ज्वल तारे हैं, और चाहे हम-आप इनकी कविता का आदर अभी न करें, ये यथा समय अवश्य ही चमकेंगे, और

इनकी उत्कृष्ट रचनाओं से हिंदी-भाषा का मुख उज्ज्वल होगा।

मैंने श्रीसुमित्रानंदनजी पंत के 'पल्लव' का अध्ययन नहीं किया, परंतु उनकी 'ग्रंथि' को कई बार पढ़ा है। मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि 'ग्रंथि' हिंदी-भाषा की अमर सामग्री है। मुझे 'ग्रंथि' के पढ़ने से पंतजी की कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिला। यदि और नहीं, तो केवल इसी एक 'ग्रंथि' के आधार पर मैं पंतजी को एक बड़ा कवि मानने को तैयार हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि पंतजी पुरानी लकीर नहीं पीटते। परंतु केवल इसी कारण उनकी कविता बुरी नहीं कही जा सकती। इसमें संदेह नहीं कि पंतजी की कविता कठिन होती है। परंतु प्रसाद, ओज तथा माधुर्य के नाम की दुहाई देकर उसे हम बुरा नहीं कह सकते। मैं कहता हूँ, आप दो बार ध्यान-पूर्वक ग्रंथि' पढ़ जाइए, और फिर देखिए, आपको आनंद आता है या नहीं।

यह बात सत्य है कि पंतजी की कविता में अलंकारों की ही प्रधानता नहीं है; परंतु उसमें खोजने से अलंकार भी मिलते हैं। हम लोगों को अब अलंकारों को ही सब कुछ न मान लेना चाहिए।

निरालाजी भी अपने ढंग के अच्छे कवि हैं। श्रीजयशंकर-प्रसादजी तो ऊँचे दर्जे के कवि हैं। ये लोग व्याकरण की उतनी परवा चाहे न करते हों, परंतु इतना तो मैं कह सकता हूँ कि इन लोगों की कविता में जान है, और वह साहित्य की सामग्री है।

सुकवि-किंकरजी ने छायावाद की कुछ कविताओं का भी उल्लेख किया है। पता नहीं, आपने उन कविताओं को छायावाद की कविता कैसे स्वीकार कर लिया! मैं तो उनमें छायावाद की छाया भी नहीं पाता। सुकवि-किंकरजी से मेरा नम्र निवेदन है कि वास्तव में वे छायावाद की कविता हैं ही नहीं।

मैं यह नहीं जानता कि ये सब किनकी कविताएँ हैं। यदि इन कविताओं के लेखक इन्हीं कविताओं के आधार पर अपने को छायावादी समझने लगे हैं, तो वे अवश्य ही भारी भ्रम में पड़े हैं। यदि वे अपने को छायावादी कहने का साहस करें, तो ऐसा प्रकाशित करा दें, मैं उनके दावे का खंडन करने को प्रस्तुत हूँ। ठीक-ठीक रहस्यवाद या छायावाद की कविता करना उतना सहज नहीं है। और, न कोई केवल नवीनता के आधार पर ही छायावादी कवि होने का दावा कर सकता है। कविता में रस तथा भाव ही प्रधान वस्तु हैं, भाषा या शैली नहीं। रस और भाव ही कविता की अंतरात्मा हैं, कविता की जान हैं। भाषा और शैली उसके वस्त्र हैं। हम लोगों को इन नवीन कविताओं में पहले रस और भाव देखना चाहिए। यदि कोई कवि किसी भाव की प्रधानता में आकर पूर्ववर्ती छंदों में न लिखकर किसी नए ढंग से लिखता है, तो कोई चिंता नहीं। पिंगल में जितने छंद हैं, वे भी सब-के-सब एक साथ ही आकाश से नहीं गिर पड़े। उनका भी धीरे-धीरे विकास हुआ है। इसी प्रकार अब भी कविता में शैली, भाषा तथा छंद आदि की नवीनता हो सकती है। परंतु इसका आशय यह नहीं कि कवियों को उच्छृंखल हो जाना चाहिए। जब कोई कवि किसी नवीन शैली का आविष्कार या अनुसरण करे, तो उसमें कोई-न-कोई विशेषता—चाहे भाव तथा संगीत की हो या अन्य किसी विषय की—अवश्य होनी चाहिए। मैं सुकवि-किंकरजी के लेख से उनके हृदय की मार्मिक पीड़ा का स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा हूँ। मुझे भी कभी-कभी वास्तव में इसी प्रकार का हार्दिक दुःख हुआ है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि कभी-कभी कोई-कोई कवि व्यर्थ ही, जान-बूझकर, अपनी कविता में केवल नवीनता-ही-नवीनता लाने का प्रयत्न करते हैं। जो बात कवि

प्राचीन ढंग से भी उतनी ही ख़ूबी के साथ कह सकता था, उसी को वह शेख़ी के मारे, व्यर्थ ही, बिना किसी उद्देश्य के, नवीन ढंग से लिखने का व्यर्थ परिश्रम तथा असफल चेष्टा करता है। मैं स्पष्ट तथा प्रकट रूप से इसका शीघ्र ही विरोध करने का विचार कर रहा हूँ। भाषा, भाव, रस, शैली, कला तथा किसी अन्य उद्देश्य के लिये नवीनता कोई बुरी बात नहीं; परंतु बिना किसी उद्देश्य के ऐसा करना ढोंग है, अनुचित है, मिथ्याभिमान है।

परंतु पिंगल के पुराने छंदों से भिन्न हो जाने से ही कोई कविता ख़राब नहीं कही जा सकती। संस्कृत में, तथा हिंदी में भी, गद्य-काव्य भी होता ही है। यदि किसी कवि की कविता पिंगल के पद्य न होकर साधारण गद्य की तरह जान पड़े, तो यह कोई दोष नहीं। मैं नीचे श्रीदुलारेलालजी भार्गव की एक कविता उद्धृत करता हूँ। यह कविता 'कृष्णकुमारी'-नामक नाटक की भूमिका में लिखी गई है। यदि इसके स्थान पर यह भूमिका गद्य में लिखी गई होती, तो इसमें ऐसा आनंद कभी न आता, जैसा कि इसके पढ़ने से आता है। इसके साथ-ही-साथ इसका अर्थ तो ऐसा ही स्पष्ट है, जैसे यह गद्य हो। परंतु इस प्रकार लिखने से भूमिका का महत्त्व बहुत कुछ बढ गया है। इसलिये इस प्रकार की नवीनता एक उद्देश्य की पूर्ति करती है। इस प्रकार की नवीनता वांछनीय है, और इसे कोई दोष नहीं कह सकता। उक्त कविता यह है—

"कृष्णकुमारी काम-कामिनी-सी कमनीया, कंज-कली,
सुगुण-संयुता सुता प्राण-प्रिय राणा भीमसिंह की थी।
जयपुर एवं मारवाड़ के भूपति भारी बल-धारी,
पाणि-ग्रहण करने को उसका, दोनो ही लालायित थे।

इसी लालसा-पूर्ति-हेतु दोनो ने दूत उदयपुर को
भेजे थे। राणा के ऊपर भय, विषाद असमंजस ने
था अधिकार जमाया—उनका हृदय फटा-सा जाता था।
'जिसकी इच्छा पर पानी फिरता है, वही शत्रु बनकर,
लेकर साथ मित्र-राज्यों को दल-बल से चढ़ आवेगा'—
यही सोचकर भीमसिंह राणा की अक़्ल हुई गुम थी।
पर प्रिय जन्म-भूमि रखने को रक्त-पात से अलग, अहह!
कृष्णाकुमारी ने निज तनु—विष-जड़—विष पीकर त्याग दिया,
और मृत्यु के साथ ब्याह-बंधन को कहीं मधुर समझा,
जिसके सुंदर सुयश-सुमन का सौरभ अब भी फैला है!"

❀ ❀ ❀

योरप के महाभारत से पहले वहाँ (योरप में) देहात्मवाद का बोलबाला था। युद्ध के बाद से योरप के लोगों का ध्यान ईश्वर की ओर आकृष्ट होने लगा है। इस समय संसार में इसकी लहरें उठ रही हैं। भारत भी उससे अलग नहीं रह सकता। जहाँ तक मैं समझता हूँ, रहस्यवाद की कविता में ही भारतीयता है। ईश्वर करे, भारत में भी, विशेषकर हिंदी में, अनेक रहस्यवादी और रहस्यवादी कवि उत्पन्न हों।

❀ ❀ ❀

छायावाद के संबंध में हिंदी-भाषा-भाषियों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। कोई-कोई इसे रहस्यवाद कहते हैं। वास्तव में ये शब्द अँगरेज़ी 'मिस्टिक' के ही द्योतक हैं। हाल ही में सुकवि-किंकरजी ने पंडित मथुराप्रसाद मिश्र के त्रैभाषिक कोश से इसका अर्थ ढूँढ़ निकाला है। सुकवि-किंकरजी ने लिखा है—"शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े, तो उसे छायावाद-कविता कहना चाहिए।"

मिस्टिक-शब्द का अर्थ सुकवि-किंकरजी ने, मिश्रजी के कोश के अनुकूल, गूढ़ार्थ, गुह्य, गुप्त, गोप्य और रहस्य लिखा है। इस संबंध में मैं सुकवि-किंकरजी से निवेदन करूँगा कि मिस्टिक शब्द का अर्थ यह नहीं है। रहीम पर कुछ कहना हो, तो राम का चरित गाने से, अथवा अशोक पर लिखना हो, तो सिकंदर के जीवन-चरित की चर्चा करने से ही छायावाद की कविता नहीं कहला सकती। सहोक्ति अलंकार तथा द्व्यर्थक कविता रहस्यवाद की कविता नहीं हो सकती।

बाबू श्यामसुंदरदासजी ने भी कायस्थ-पाठशाला-कॉलेज के बोर्डिंग-हाउस में. हिंदी-साहित्य के विकास के संबंध में, जो भाषण दिया था, उसमें छायावाद के विरुद्ध कहा था। पता नहीं, बाबू साहब ने छायावाद के अर्थ के संबंध में वहाँ कुछ कहा था या नहीं। परंतु उस भाषण का जितना अंश सुकवि-किंकरजी ने 'सरस्वती' में दिया है, उसमें तो बाबू साहब ने छायावाद की कोई व्याख्या नहीं की। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने ऐसे कवियों के विरुद्ध अवश्य लिखा है, जिनकी कविता कठिन होती है, और जो स्वयं ही अपनी कविता का अर्थ नहीं समझते। यह बात सच है कि छायावादी कवियों की कविता पर अर्थ-काठिन्य का दोष अवश्य मढ़ा जा सकता है। जब श्रीद्विजेंद्रलाल राय ने श्रीरवींद्रनाथजी की कविता की कड़ी समालोचना की थी, तो सबसे बड़ा दोष उनकी कविता में यही—अर्थ की कठिनता ही—निकाला था। द्विजेंद्रलाल राय ने कई पद्यों के अर्थ स्पष्ट कर देने के लिये उन्हें ललकारा भी था। परंतु इन सब बातों से यह न समझ लेना चाहिए कि किसी कविता का अर्थ कठिन हो गया हो, तो, बस, वह छायावाद की कविता हो गई।

मुझसे छायावाद के संबंध में और भी लोगों से बातें हुई

हैं। कोई इसका कुछ अर्थ करता है, कोई कुछ। कोई-कोई छाया-वाद और रहस्यवाद को समानार्थक ही समझते हैं। वास्तव में बात यह है कि अभी तक छायावाद का अर्थ हिंदी में निश्चित नहीं हो पाया है। इस अर्थ के निश्चित न होने से ही हिंदी में गड़बड़ी फैली हुई है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि छायावाद का अर्थ किसी सभा के प्रस्ताव द्वारा निश्चित करना चाहिए। मेरा कहना केवल यह है कि इसका प्रयोग उसी अर्थ में करना चाहिए, जिसमें उचित है। मैं पहले ही स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि वर्तमान काल में, अभी तक, हिंदी में रहस्य-वाद की कोई कविता नहीं हुई। मनमानी करने से कोई कवि रहस्यवादी नहीं हो सकता। यदि कोई कवि जान-बूझकर ऐसी कविता करे, जो कठिन हो, या जिसका कोई भी, यहाँ तक कि स्वयं कवि भी, अर्थ न कर सके, तो केवल इसी कारण वह रहस्यवादी कवि नहीं कहा जा सकता।

यदि कोई ऐसी कविता आपके सामने आवे, जिसका अर्थ, अच्छी तरह विचारने पर भी, समझ में न आवे, तो सहसा आप यह न समझ लीजिए कि बस, यह कविता रहस्यवाद-संबंधी है। कोई कविता इसीलिये रहस्यवाद की कविता नहीं कही जा सकती कि उसका अस्तित्व पिंगल के छंदों में नहीं है। कोई थोड़ी-सी अथवा अधिक नवीनता देखकर आप यह न समझ लें कि यह कविता रहस्यवाद की है। पहले आप रहस्य-वाद के अर्थ का निश्चय करिए, तब उसी के अनुसार एक कसौटी तैयार करिए, तदनंतर उस कविता को उक्त कसौटी पर कसिए। यदि वह कविता खरी निकले, तो उसे रहस्यवाद की कविता मान लीजिए। यदि वह कविता उस कसौटी पर खरी न उतरे, और तब भी यदि उसका रचयिता उसे रहस्यवाद की

कहे, तो उसकी ऐसी कड़ी समालोचना कीजिए कि कवि भी याद करे।

संगीत भी एक प्रकार की कविता है। आप चाहे जो गाइए, वह कविता (बुरी अथवा अच्छी) अवश्य ही रहेगी। परंतु संगीत का गान-विद्या से अधिक संबंध है, और यह एक कला है। कला की कुछ-न-कुछ आवश्यकताएँ अवश्य हुआ करती हैं। संगीत उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। ऐसा करने में वह, पिंगल के छंदों के रूप में न होकर, उनसे भिन्न भी रूप धारण कर लेता है। तो क्या ऐसी दशा में वह कविता नहीं रह जाती? इसलिये हम लोगों को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐसी कविता भी हो सकती है, जिसमें पिंगल के नियम न लगें। परंतु इसी कारण वह संगीत रहस्यवाद की कविता नहीं कहा जा सकता। यदि हिंदी-भाषा के कुछ ऐसे कवि हों, जो जान-बूझकर रहस्यवादी कवि बनने की व्यर्थ चेष्टा करते हों, और कोई हिंदी का विद्वान् उन्हें रहस्यवादी कवि न समझता हो, तो उसे स्पष्ट रूप से उनका नाम लेना चाहिए। तब उस पर विचार किया जा सकता है। जो लोग समझते हैं कि कुछ कवियों की कविताओं से वास्तव में साहित्य की हत्या हो रही है, तो स्पष्ट रूप से उन्हें चेतावनी देनी चाहिए।

रहस्यवाद के संबंध में श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर का नाम प्रायः दोनो लेखों के लेखकों ने लिया है। प्रायः सब लोग कहते हैं, सुकवि-किंकरजी ने यही बात स्वीकार की है, और बाबू श्याम-सुंदरदासजी ने भी एक प्रकार से स्वीकार किया है कि श्रीरवींद्र-नाथ ठाकुर रहस्यवादी हैं। मेरा विश्वास है कि रवींद्रनाथ ठाकुर रहस्यवादी नहीं हैं। संभव है, रवींद्र बाबू रहस्यवादी कवि भी हों, किंतु वह छायावादी तथा छायावादी कवि अवश्य हैं। मैंने

रहस्यवाद और छायाबाद का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है, जैसा कि आगे पढ़ने से पता चलेगा। रहस्यवाद तथा रहस्यज्ञ कवि, ये एसे पद हैं, जो श्रीरवींद्रनाथजी ठाकुर को नहीं दिए जा सकते। महात्मा कबीरदासजी वास्तव में रहस्यवादी थे, और वह रहस्यवाद की कविता करते थे। एक प्रकार से किसी व्यक्ति को रहस्यवादी तथा रहस्यवादी कवि कहना मेरी अनधिकार चर्चा है, और मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि इस संबंध में मुझसे ग़लती हो जाना बहुत ही अधिक संभव है। परंतु इन दोनो महाकवियों (महात्मा कबीरदास और श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर) के इतिहास, जीवन-चरित्र तथा कविता की भी तुलना करके मैंने निश्चय किया है कि रवींद्र बाबू रहस्यवादी तो हैं ही नहीं, चाहे वह रहस्यवादी कवि भले ही हों।

(२)

रहस्यवाद का विषय उतना ही प्राचीन है, जितना हिमालय पर्वत। जिस दिन समाज में धर्म का प्रश्न उठा, जिस दिन मनुष्यों में ईश्वर का प्रश्न उठा, जिस दिन मनुष्यों में साहित्य-चर्चा होने लगी, उसी दिन, पहले ही, रहस्यवाद का प्रश्न उठ चुका था। कुछ लोग कहते हैं, अरब तथा फ़ारस के सूफ़ी लोग ही रहस्यवाद के जन्म-दाता हैं, और उन्हीं लोगों ने संसार-भर में इसका प्रचार किया। परंतु ऐसा कहना भ्रम है। सूफ़ियों के जन्म के बहुत पहले रहस्यवाद से संसार के लोग परिचित हो गए थे। उदाहरण के लिये मैं पहले चीन को लेना अच्छा समझता हूँ। चीन में सूफ़ियों से बहुत पहले रहस्यवाद का प्रचार हो चुका था। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे ईसाई-लेखक मिलते हैं, जो समझते हैं, रहस्यवाद का प्रचार केवल ईसाई-धर्मावलंबियों में ही पाया जाता है।

कई ईसाई-लेखकों ने तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि इसका प्रचार तथा अस्तित्व केवल ईसाइयों में ही पाया जाता है; दूसरे धर्मावलंबियों में जिस रहस्यवाद का प्रचार पाया जाता है, वह सत्य नहीं, झूठा है। एकआध ऐसे भी ईसाई पाए जाते हैं, जो, जब प्लाटिनस को रहस्यवादी कहते हैं, तो समझते हैं कि वे उस पर बड़ी कृपा कर रहे हैं। प्लाटिनस ईसाई नहीं था। इस संबंध में ए० बी० शार्प साहब लिखते हैं—

"The experimental knowledge of God by means of special divine illumination must, according to the view we are advocating, be considered to be prerogative of Christianity. For since the fulness of divine knowledge, so far as it is attainable by human beings in this life, is to be found in the Christian religion alone it is evidently inconceivable that such knowledge should either fail to be found there in its highest form, which is mysticism, or that it should exist elsewhere in equal perfection. This view is, for the most part fully borne out by a comparison of Christian mysticism with such few instances of non-Christian religious experiences as may by straining of the epithet be called mystical. So also the mystical pretensions of persons outside the pale of the Catholic Church and those which, though made on behalf of Catholics, the Church holds to be spurious, are manifestly untenable on the principles laid down by Catholic authority as to the necessary character and results of true mysticism. There is, however, one case, which it is difficult not to regard as an exception to this rule that of Plotinus."

इस अँगरेज़ी अवतरण का निचोड़ यह है—"विशेष ईश्वरीय

प्रकाशन द्वारा ईश्वर का परीक्षात्मक ज्ञान, इस दृष्टि-कोण से, केवल ईसाई-धर्म का ही विशेष अधिकार है; क्योंकि ईश्वर का संपूर्ण ज्ञान—अर्थात् रहस्यवाद—जितना कि इस जीवन में प्राप्त किया जा सकता है, केवल ईसाई-धर्म में ही पाया जाता है। यह भी नहीं माना जा सकता कि ईश्वर का पूर्ण ज्ञान, अर्थात् रहस्यवाद इसी पूर्णावस्था में और भी कहीं पाया जाता है, और यह मानने में भी कठिनाई पड़ती है कि रहस्यवाद का सर्वश्रेष्ठ दशा में कहीं अस्तित्व मिलता है। यदि ईसाई-धर्मावलंबियों के रहस्यवाद-संबंधी अनुभव के साथ अन्य धर्मावलंबियों के अनुभव की तुलना करें, तो प्रकट होता है कि अन्य मतों के अनुभवों को हम लोग रहस्यवाद नहीं कह सकते। ईसाई-धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलंबियों के अनुभवों को रहस्यवाद कहना एक प्रकार से रहस्यवाद का तोड़-मरोड़ करना होगा। यदि वास्तव में देखा जाय, तो अन्य धर्मों के अनुभव रहस्यवाद नहीं कहे जा सकते। कैथलिक संप्रदाय ने सच्चे रहस्यवाद के स्वभाव तथा लक्षण आदि का उल्लेख किया है। जो लोग कैथलिक संप्रदाय के बाहर के हैं, अथवा जो कैथलिक संप्रदाय की ओर से कहने का बहाना करते है, वे भी कैथलिक संप्रदाय के निर्द्धारित सिद्धांतों की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते। हाँ, केवल प्लाटिनस का एक ही उदाहरण ऐसा है, जो इस नियम का अपवाद है। प्लाटिनस को इस नियम का अपवाद न मानना बड़ा कठिन है।

ऊपर की अँगरेज़ी का यह अनुवाद नहीं, किंतु भाव है। परंतु इससे ए० बी० शार्प की अज्ञता का पता अवश्य ही लग जाता है। अज्ञता कहने से मेरा आशय यह नहीं कि शार्प ने जान-बूझकर डींग हाँकी है। मेरा मतलब केवल यह है

कि वह दूसरे देशों के रहस्यवाद के संबंध में कुछ भी नहीं जानते। यदि प्लाटिनस को इस नियम का अपवाद मानना कठिन न होता, तो हजरत उसे भी रहस्यवादी न मानते। प्लाटिनस कौन था, उसके क्या सिद्धांत हैं, और संसार के रहस्यवाद में उसका क्या स्थान है, इन प्रश्नों पर मैं अन्य लेख में विचार करूँगा।

ए० बी० शार्प के सिद्धांतों का खंडन करने के लिये पाश्चात्य देशों का उदाहरण लेना अधिक उपयुक्त होगा। जब ईसा-मसीह का जन्म नहीं हुआ था, तब भी यूनानी लोग रहस्यवाद से परिचित हो चुके थे। यहाँ तक कि महात्मा सुकरात के जन्म से भी पहले वहाँ रहस्यवाद का प्रचार हो गया था। उस समय भी यूनान में कुछ ऐसे आदमी थे, जो अपने को परमेश्वर का ढोनेवाला (God-bearer) कहते थे। उक्त अँगरेजी शब्द का ठीक अर्थ प्रकट करनेवाला कोई शब्द मुझे नहीं मिला, तथापि उसका प्रधान अर्थ यही है कि उन लोगों को ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो चुका था। ईसामसीह के जन्म के पहले ही यूनान में कुछ ऐसे लोग थे, जो ईश्वर की पूजा में लगे रहते थे। ये कभी-कभी किसी-किसी व्यक्ति को अपना चेला भी बना लेते थे।

ये लोग अपने को प्राय: द्रष्टा (Seers) कहा करते थे। इन लोगों की बातों का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता था। ये लोग अपने अनुभव के आगे न्याय तथा बुद्धि-संबंधी बातों की अवहेलना करते थे। संसार के इतिहास में यह सर्वदा देखा गया है कि प्राय: रहस्यवादी लोग अपने अनुभव के आगे किसी वस्तु का महत्त्व ही नहीं समझते। यही बात यूनान में भी थी। धीरे धीरे यूनान में इन बातों का इतना प्रचार हो गया कि साधारण लोग भी अपने को ब्रह्मज्ञानी कहने तथा

तर्क और बुद्धि की अवहेलना करने लगे। इसी समय यूनान में महात्मा सुक़रात का जन्म हुआ, जिसने तर्क तथा न्याय पर बहुत ही अधिक ज़ोर देना शुरू कर दिया। महात्मा सुक़रात के पहले के यूनानी दार्शनिक प्रायः द्रष्टा (Seers) हुआ करते थे। परंतु सुक़रात के बादवाले दार्शनिक विवेकी, विचारवान्, न्यायप्रिय और तार्किक होने लगे।

अलेक्ज़ंड्रिया में भी रहस्यवाद का प्रचार होगया था। बहुत लोगों का विचार है कि अलेक्ज़ंड्रिया में रहस्यवाद का प्रचार ईसाइयों द्वारा नहीं, किंतु प्लेटो के शिष्यों द्वारा हुआ, इसलिये वहाँ का रहस्यवाद ईसाइयों के रहस्यवाद से स्वतंत्र है। अलेक्ज़ंड्रिया के 'फ़िलो' का कहना है कि वहाँ पर प्लेटो और ईसाई, दोनो के रहस्यवाद का प्रभाव पड़ा था। अलेक्ज़ंड्रिया के अलावा मिसर देश में तथा और भी कई स्थानों में रहस्यवाद के अस्तित्व का पता चलता है, और वह भी ईसा के पहले के रहस्यवाद का।

यह बात सब लोगों को स्वीकार करनी पड़ेगी कि गौतम बुद्ध का जन्म ईसा से लगभग ६०० वर्ष पहले हुआ था। और भी निश्चित है कि गौतम बुद्ध के जन्म से पहले ही चीन में रहस्यवाद का प्रचार हो गया था। इसके कई प्रमाण मिले हैं कि ईसा के जन्म से ६०० वर्ष पहले चीन में ताओ (Tao) का प्रचार हो गया था। यदि इस ताओ और प्लाटिनस के लेखों की पारस्परिक तुलना करें, तो स्पष्ट हो जायगा कि ये दोनो कई अंशों में मिलते हैं; दोनो के प्रधान सिद्धांत एक ही हैं। इस ताओवाद का प्रचार प्रसिद्ध चीनी सुधारक कन्फ्यूशियस के पहले ही चीन में हो गया था; क्योंकि कन्फ्यूशियस ने इसके विरुद्ध लिखा तथा आंदोलन किया है। इन सब बातों से प्रकट

है कि ईसा मसीह के जन्म से पहले भी रहस्यवाद का अस्तित्व संसार के अनेक भागों में पाया जाता था।

मैं भारत की महत्ता की व्यर्थ डींग हाँकने का पक्षपाती नहीं हूँ। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि यह समय ऐसा है कि भारत अपनी दुर्बलताओं और कवियों को समझे। व्यर्थ डींग हाँकने से अकर्मण्यता तथा मिथ्याभिमान बढ़ने के सिवा हमारा कोई लाभ नहीं है। परंतु जो सत्य है, उसको छिपाना भी उचित नहीं। यदि इस भूमंडल में सर्वप्रथम किसी देश में रहस्यवाद का प्रचार हुआ, तो वह देश अवश्यमेव यही वृद्ध भारत है। चाहे भारत और किसी बात में अन्य देशों से प्राचीन काल में कम रहा हो, परंतु रहस्यवाद की लहरें पहलेपहल यहीं उठी थीं।

कुछ निष्पक्ष पाश्चात्त्य विद्वानों ने भी इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि भारतवर्ष में ही सबसे पहले रहस्यवाद का प्रचार हुआ था। साथ ही जब हम यह देखते हैं कि सुकवि किंकरजी इसे आधुनिक श्रीरवींद्रनाथ के मस्तिष्क की उपज बतलाते हैं, तो उसका प्रतिवाद किए बिना नहीं रहा जाता। सबसे पहले रहस्यवाद का प्रचार वेदों में हुआ। वेदों ने मेघ-गर्जन की तरह, सिंहनाद की भाँति, भारत में रहस्यवाद का प्रचार किया। उपनिषदों में रहस्यवाद की ख़ूब व्याख्या की गई है। हमारे शास्त्र तो रहस्यवादमय हैं ही। पुराण भी इससे भरे पड़े हैं। परंतु जब यही रहस्यवाद 'मिस्टिक' शब्द के रूप में पाश्चात्त्य देशों से हम लोगों के सामने आता है, तो हम लोग इसे हौआ समझते हैं; हम लोग समझते हैं, यह कोई अपूर्व पदार्थ है। खेद है कि हम लोग पहले अपनी पुरातन बातों और अपने प्राचीन सिद्धांतों की अवहेलना कर देते हैं, पर जब

कोई पाश्चात्त्य विद्वान् उसी बारे में कुछ कहता है, तो फिर हम बड़ी श्रद्धा से उस पर विश्वास कर लेते हैं। केवल इतना ही नहीं, उसे हम लोग आदर की दृष्टि से देखने लगते हैं।

❀ ❀ ❀

ब्रह्म या ईश्वर का संयोगिक साक्षात्कार तथा स्पष्ट और तात्कालिक अनुभव ही रहस्यवाद है, और ब्रह्म या ईश्वर के साथ आत्मा के संभवतः संयोग-साक्षात्कार और तात्कालिक अनुभव का सिद्धांत ही छायावाद है।

अभी तक हिंदी से रहस्यवाद और छायावाद का प्रयोग एक ही अर्थ में होता रहा है। परंतु मैंने इन शब्दों का प्रयोग दो भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। इसका कारण यह है कि 'मिस्टिक' की दो प्रधान दशाएँ हैं। एक के लिये मैंने रहस्यवाद का और दूसरी के लिये छायावाद का प्रयोग किया है। संस्कृत के दार्शनिक ग्रंथों में ब्रह्म और ईश्वर-शब्दों का प्रयोग भी भिन्न-भिन्न अर्थों में होता है। परंतु मैंने इस पुस्तक में इन दोनो का प्रयोग एक ही अर्थ में किया है। प्रायः अधिकांश दार्शनिकों ने इस बात को स्वीकार किया है कि एक ही सिद्धांत से, एक ही तत्त्व से संसार की सब वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। वेदांती लोग उसे ब्रह्म कहते हैं, और साधारण लोग उसे ईश्वर या परमेश्वर। पतंजलि ऋषि ने भी उसे ईश्वर कहा है, जैसा कि उनके इस सूत्र से प्रकट है—

"क्लेश कर्मविपाकाशयाऽपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।"

प्लेटो इसे 'कल्याण', स्पिनोज़ा इसे स्वतंत्र पुरुष, ग्रीन इसे सार्वभौमिक चेतनता और ब्रैडले इसे निरपेक्ष्य कहता है। चाहे हम उसे ब्रह्म कहें, चाहे सत्यं शिवं और सुंदरम्, और चाहे किसी और ही दूसरे नाम से पुकारें, उस एक तत्त्व के अर्थ में ही

मैंने ब्रह्म या ईश्वर-शब्द का प्रयोग किया है। रहस्यवाद के अनुसार रहस्यवाद-संबंधी ध्यान का अर्थ ईश्वर का दर्शन है। यह 'दर्शन' या 'देखना' शब्द भ्रम उत्पन्न कर सकता है; परंतु किया क्या जाय, कोई दूसरा शब्द मिलता ही नहीं, जो इसके ठीक-ठीक अर्थ को प्रकट कर सके। जब हम कहते हैं कि रहस्य-वादी ईश्वर को देखता है, तो उससे हमारा यह तात्पर्य नहीं होता कि वह ईश्वर को उसी प्रकार देखता है, जैसे हम मनुष्यों, वृक्षों या घरों को देखते हैं; क्योंकि परमेश्वर अदृश्य है, अर्थात् वह परमेश्वर इन आँखों से नहीं देखा जा सकता। जब हम कहते हैं कि रहस्यवादी ईश्वर को देखता (Vision) है, तब हमारा मतलब चक्षु-इंद्रिय के साधारण व्यापार से भिन्न रहता है। हम लोग कभी-कभी समझने के अर्थ में भी 'देखना' शब्द का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी हम कहते हैं— 'देखा तुमने ?" तब उसका यह आशय रहता है कि "समझा ?" कहने का तात्पर्य यह कि 'देखना' शब्द का प्रयोग 'बुद्धि के द्वारा किसी विचार या ज्ञान को समझने' के अर्थ में भी करते हैं। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या हम लोग 'साक्षात्कार' अथवा 'देखना' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करते हैं ? क्या ईश्वर के साक्षात्कार से हम लोगों का अभिप्राय ईश्वर को बुद्धि द्वारा समझना है ? रहस्य-वाद के अनुसार देखने का यह अर्थ भी नहीं है, क्योंकि रहस्य-वादी लोग उस समय किसी विचार या ज्ञान को केवल सम-झते ही नहीं, प्रत्युत एक सजीव सत्य भी देखते हैं। इसी कारण रहस्यवादी कह उठता है—"वह अनिर्वचनीय है; उसका अनुभव तो किया जा सकता है, परंतु वह बतलाया नहीं जा सकता।"

इस समय रहस्यवादी लोग ईश्वर के संबंध में किसी विचार, ज्ञान अथवा भाव का नहीं, स्वयं ईश्वर का अनुभव करते हैं,

स्वयं ईश्वर को देखते हैं। रहस्यवादियों का यह देखना विचित्र, अद्वितीय और अनमोल है। रहस्यवाद की परिभाषा में मैंने 'तात्कालिक' शब्द का प्रयोग किया है। जैसे आत्मा के लिये ईश्वर है, वैसे ही शरीर के लिये आँखें। इसी समता के कारण हम लोग 'तात्कालिक' शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका आशय यह है कि जैसे आँखें किसी भौतिक पदार्थ (मनुष्य, वृक्ष, घर आदि) को देखती हैं, वैसे ही आत्मा भी उस समय ईश्वर को देखती है। रहस्यवादी की दशा एक असाधारण दशा है, और साधारण भाषा के द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। यही कारण है कि प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स कहता है—"रहस्यवादियों की दशा अनिर्वचनीय होती है।"

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम लोगों की आत्मा के, हम लोगों की चेतना के काम इच्छा, ज्ञान और क्रिया हैं। ऐसी दशा में आत्मा ईश्वर को कैसे देख सकती है? यह मनोविज्ञान-शास्त्र का प्रश्न है, और इसकी विवेचना मैं अन्यत्र करूँगा। इसके संबंध में यहाँ लिखने से यह प्रबंध बहुत बढ़ जायगा।

रहस्यवाद की परिभाषा में मैंने संयोगिक साक्षात्कार का प्रयोग किया है। इसका आशय यह है कि रहस्यवादी केवल ईश्वर को देखता ही नहीं, प्रत्युत उसका ईश्वर से संयोग भी होता है। उस समय रहस्यवादी लोग ईश्वर को दूर से नहीं, संयोग द्वारा उस रूप में देखते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। यह ऊपरी नहीं, आभ्यंतरिक अनुभव है। उस समय रहस्यवादी ईश्वर मयत्ववादी (Pantheism) के रूप में नहीं रहता, वह ईश्वर की असाधारण क्रिया के द्वारा उस (ईश्वर) से मिल जाता है। परंतु रहस्यवादी का ईश्वर से यह संयोग स्थायी नहीं

होता; क्योंकि उस संयोग के नष्ट हो जाने पर रहस्यवादी अपनी परिमित तथा शांत दशा का अवश्य ही अनुभव करता है। इसीलिये दार्शनिक जेम्स लिखता है—"रहस्यवादियों का यह संयोग चिरस्थायी नहीं होता।"

जब रहस्यवादी का ईश्वर से संयोग होता है, तब उसकी परिमित आत्मा उस अनंत ईश्वर का स्पष्ट अनुभव करती है। इसीलिये प्रसिद्ध बेलजियन कवि मेटरलिंक छायावाद के संबंध में कहता है—

Those intutions, grasps of guess,
Which pull the more into the less,
Making the finite comprehend infinity.

इस संयोगावस्था में रहस्यवादी को बड़ी प्रसन्नता होती है। इसी आनंद को वेदांतियों ने ब्रह्मानंद कहा है। इस संबंध में पाश्चात्त्य देश का प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि वर्ड्सवर्थ कहता है—

In such access of mind, in such high hour,
Of visitation from the living God,
Thought was not in enjoyment it expired.
No thank he breathed, proffered no request ;
Rapt into still communion that transcends,
The imperfect offices of praise and prayer.
His mind was a thankgiving to the power,
That made him, it was blessed and love.

इसका भावार्थ यह है कि जब इस आत्मा को प्रत्यक्ष ईश्वर का साक्षात्कार होता है, अर्थात् आत्मा और ईश्वर की संयोगावस्था में विचार का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता, तब वह परमानंद में डूब जाता है, उसी में ग़र्क़ हो जाता है। जब आत्मा उस संयोगावस्था में तल्लीन रहती है, तब प्रशंसा और प्रार्थना आदि

के अपूर्ण काम नहीं किए जा सकते, क्योंकि वह अवस्था इन सबके परे है। उस समय मनुष्य का मन और हृदय अपने सृष्टिकर्ता को धन्यवाद देता है। उस समय वह आनंदमय और प्रेममय होता है।

जब रहस्यवादी को ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है, जब उसे अपने अमर होने का विश्वास हो जाता है—तब उसका जीवन पूर्ण हो जाता है। रहस्यवादी इन सब वस्तुओं का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब मनुष्य का जीवन पूर्ण हो जाता है, तब क्या वास्तव में वह अपने में अनंत का अनुभव करने लगता है? क्या जीवन के पूर्ण होने पर भी रहस्यवादी परिमित ही रहता है? क्या उस समय रहस्यवादी के अस्तित्व को अनंत मिटा नहीं देता?

इन प्रश्नों का उत्तर डोबेल नाम के कवि ने यों ही दिया है—

"Also, there is in God,
Which being seen would end us with a shock
Of pleasure. It may be that we should die,
As men have died, of joy, all mortal powers.
Summed up and finished in a single taste
Of superhuman bliss; or, it may be
That our great latent love, leaping at once
A thousand years in stature—like a stone
Dropped to the central fires, and at a touch
Loosed into vapour—should break up the terms
Of separate being, and as a swift rack
Dissolving into heavvn, we should go back
To God."

इसका भावार्थ यह है कि जब ईश्वर का साक्षात्कार होता है, तब उसमें एक ऐसी वस्तु दिखलाई पड़ती है, जो अवश्य ही

आनंद के मारे रहस्यवादी का अंत कर देती है। यह भी संभव है कि हम लोग आनंद की अधिकता के कारण मर जायँ। उस असाधारण आनंद के कारण सब विनाशशील शक्तियों का अंत हो जाता है। और, यह भी संभव है कि हम लोगों का गुप्त प्रेम बिलकुल प्रकट हो जाय, हम लोगों के भिन्न एवं परिमित अस्तित्व का अंत हो जाय, और हम ईश्वर में मिल जायँ।

पूर्वोक्त कविता में कवि कहता है—जब रहस्यवादी पूर्ण—अर्थात् ईश्वर—का अनुभव करता है, तब वह या तो आनंद के मारे मर जाता है, या उसी ईश्वर में उसका भी लय हो जाता है।

इस संयोगावस्था में ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाता है।

ईश्वर अर्थात् सत्य का प्राप्त करना ही रहस्यवाद है। यहाँ पर मैंने रहस्यवाद का अत्यंत संक्षिप्त दिग्दर्शन-मात्र कराया है, परंतु इतने से भी स्पष्ट है कि रहस्यवाद का प्रश्न मनोविज्ञान का प्रश्न है, और वास्तव में रहस्यवाद का अध्यात्म-विद्या से भी बहुत ही अधिक घनिष्ठ संबंध है।

मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक रहस्यवाद का वर्णन मैं अन्यत्र करूँगा। यहाँ पर केवल इतना और लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि ईश्वर, ब्रह्म या सत्य की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। एक मार्ग विचारशील पुरुषों अर्थात् दार्शनिकों का है; दूसरा धर्म का है; तीसरा कलाविद् कवियों का है; चौथा संगीत-कलाविदों का और पाँचवाँ संतों का है। इनके अतिरिक्त ईश्वर का अनुभव करने के और भी मार्ग हो सकते हैं। इन सब मार्गों से मनुष्य रहस्यवादी हो सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रहस्यवाद का दर्शन, अध्यात्म-विद्या, धर्म, कविता, संगीत-कला और संत-मत, इन सबसे घनिष्ठ संबंध

है। प्रत्येक की दृष्टि से मैं रहस्यवाद की विवेचना आगे करूँगा। परंतु यह रहस्यवाद प्लेटोवाद से (Platorism) भिन्न है। जिन लोगों ने अँगरेजी-साहित्य का अध्ययन किया है, वे भली भाँति जानते हैं कि प्लेटोवाद रहस्यवाद (Mysticism) से कई अंशों में भिन्न है। रहस्यवाद की ऊपर की व्याख्या से यह भी प्रकट है कि रहस्यवाद पांडित्य-विचार (Scholasticism) से भी भिन्न है।

कविता में रहस्यवाद

(१)

इस बात को सब लोग मुक्त कंठ से स्वीकार करेंगे कि कविता के दो प्रधान अंग हैं—(१) कवि की चेतना और (२) कवि का विषय। यहाँ पर चेतना शब्द का प्रयोग केवल बुद्धि के लिये नहीं, प्रत्युत बुद्धि और हृदय, दोनो के लिये किया गया है। जब कोई कवि कविता करने बैठता है, तो वह अवश्य ही अपनी चेतना से सहायता लेता तथा उसका उपयोग करता है। परंतु कविता करने में वह केवल अपनी चेतना से ही नहीं, बल्कि अपने विषय से भी काम लेता है। कवि के विषय का भी उसकी कविता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। यदि कवि की चेतना प्रबल न हुई, तो उसकी कविता में अवश्य ही त्रुटि आ पड़ेगी, और यदि विषय ही कठिन हुआ, तो भी कविता में कुछ-न-कुछ त्रुटि अवश्य रह जायगी। कवि का मस्तिष्क उसके विषय के अनुकूल तथा विषय से भली भाँति परिचित होना चाहिए। कोई-कोई कविता के विषय तो इतने कठिन हो सकते हैं, जिनके लिये साधारण कवि उपयुक्त ही नहीं। रहस्यवाद का विषय भी ऐसा ही है। इस विषय पर सब कवि नहीं लिख सकते। स्वयं यह विषय ही साधारण कवियों की अनुभूति के बाहर है, और इसलिये जिस कवि ने स्वयं इसका अनुभव नहीं किया, उसका इस विषय पर लिखना साहस ही नहीं, दुस्साहस है। जैसे छोटे-छोटे लड़के

दर्शन तथा धर्म के गूढ़ सिद्धांतों को नहीं समझ सकते, उसी प्रकार वह कवि, जो दार्शनिक अथवा धार्मिक नहीं है, रहस्य-वाद को नहीं समझ सकता, और न रहस्यवाद-संबंधी कविता लिखने में ही वह सफल हो सकता है। कभी-कभी साधारण-से-साधारण विषय के संबंध में कविता लिखते समय भी देखा गया है, कवि के भाव इतने प्रबल हो उठते हैं कि उसकी बुद्धि तथा विवेक, दोनो दब-से जाते हैं, और वह अपनी कविता में अपने विवेक से उतना लाभ नहीं उठा सकता, जितना वास्तव में उसे उठाना चाहिए था। जब साधारण विषय में ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं, तो रहस्यवाद के संबंध में तो इन कठिनाइयों की अधिकता स्वाभाविक ही है। कोई-कोई विषय तो संसार के किसी भी कवि अथवा मनुष्य के लिये कठिन कहे जा सकते हैं। रहस्यवाद भी उन्हीं के अंतर्गत है। यदि सच कहा जाय, तो ये ही विषय कवि के प्रधान विषय हैं, और ये ही प्रथम श्रेणी के कवि के लिये उपयुक्त भी हैं।

मेरे उक्त कथन का अभिप्राय यह नहीं है कि केवल रहस्यवाद ही कविता का एक कठिन विषय है, और श्रेष्ठ कवि केवल वही है, जो रहस्यवाद के संबंध में कविता करे। रहस्यवाद के अतिरिक्त भी और अनेक कठिन विषय हैं, जिनमें कविता की जाती है। यहाँ पर इन कठिन विषयों के कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। धर्म के रहस्य, जीवन का अभिप्राय तथा उद्देश्य, प्रकृति के रहस्य और उसकी सुंदरता, प्रेम, मृत्यु, अमरता, जीव और माया आदि सब ऐसे ही विषय हैं। इन सब बातों को भली भाँति समझ लेना केवल साधारण लोगों के लिये ही कठिन नहीं है, अपितु उन लोगों के लिये भी कठिन

है, जो प्रतिभाशाली, अनुभवी तथा विचारवान् हैं। ये सब बातें तर्क और बुद्धि की सीमा के बाहर के विषय हैं। तथापि इन सब बातों के विषय में हम लोग कुछ-न-कुछ अवश्य ही जानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन सब बातों को हम लोग भली भाँति नहीं समझ पाते, और जब इनका विश्लेषण करने लगते हैं, तो हम को पूरी सफलता नहीं होती। इसलिये हम कहते हैं—"इन सब बातों का कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य है; क्योंकि हम लोग इन्हें भली भाँति नहीं समझ पाते।"

जब हम कहते हैं कि ये सब विषय मनुष्यों की बुद्धि की सीमा के बाहर की बातें हैं, तब हमारा अभिप्राय यह होता है कि जब हम इनके समझने का प्रयत्न करते हैं, तब इन्हें भली भाँति नहीं समझ पाते। जब हम लोग इन विषयों पर ध्यान-पूर्वक विचारते हैं, तब भी इनका अभिप्राय अच्छी तरह नहीं समझ पाते। इस संबंध में इच्छा भी हमारी विशेष सहायता नहीं करती; क्योंकि इच्छा का काम तो उन चित्रों में से किसी एक अथवा अनेक को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना है, जो हमारे मानस-पट पर स्वयं अंकित हो जाते हैं। वास्तव में इन सब कठिन विषयों के संबंध में विचार करते समय हम लोग एक भयानक जंगल अथवा अथाह समुद्र में उस यात्री के समान होते हैं, जिसे स्वयं भी उचित पथ का ज्ञान नहीं है और न उसका कोई पथ-प्रदर्शक ही है। कवि हम लोगों को पहले-पहल इसी अज्ञात देश की झलक दिखलाता है। जब कवि उस देश की झलक दिखला देता है, तब तार्किक भी उस देश में प्रवेश करता है। इसीलिये अनेक विद्वानों का कथन है कि उस अज्ञात देश की बातें तर्क, न्याय-शास्त्र तथा केवल बुद्धि से नहीं मालूम हो सकतीं, किंतु भाव से, वेदना

तथा कल्पना द्वारा मालूम हो सकती हैं। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि वे बुद्धि तथा तर्क की अवहेलना करते और भाव ही को श्रेष्ठ तथा सब कुछ समझते हैं। विचार (बुद्धि) और भाव, दोनो ही हम लोगों की चेतना के प्रधान अंग हैं, और दोनो ही बड़े महत्त्व की वस्तु हैं। दोनो का अस्तित्व केवल आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत परमोपयोगी भी है। दोनो ही अपने-अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ समझे जा सकते हैं, और समझे जाते भी हैं। विचार (बुद्धि) विज्ञान-क्षेत्र में भाव से अधिक प्रधान समझा जाता है, और भाव कविता-क्षेत्र में विचार से बहुत ही अधिक प्रधान माना जाता है। इस स्थान पर मैं इस विषय पर भी अधिक विस्तृत विचार नहीं करना चाहता कि बुद्धि (विचार) और भाव में कौन प्रारंभिक है। परंतु संसार के अधिकांश लोगों का विचार है कि भाव के द्वारा सत्य से परिचित होना बालकों तथा जंगली मनुष्यों का काम है, और यह एक प्रारंभिक बात है। अंत में मनुष्य की बुद्धि परिपक्व होती है। परंतु इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि प्रारंभिक होने के कारण यह बुरा है, और इसका कुछ महत्त्व ही नहीं। इसके विपरीत बहुत लोगों की यह निश्चित धारणा अटल विश्वास तथा परिमार्जित विचार है कि भाव संबंधी अनुभूति ही अपेक्षाकृत अधिक गंभीर होती है। इसमें संदेह नहीं कि उग्र भाव शांत विचार का बाधक है; परंतु उग्र भाव से ही हम लोगों की कल्पना का जन्म तथा उसका पालन-पोषण होता है। उग्र भाव तथा शांत-विचार, दोनो ही से सत्य, सुंदर तथा कल्याण के मार्ग का पता चलता है। दोनो ही हमारी चेतना के अंग हैं। परंतु साहित्य में उग्र भावों की ही अपेक्षाकृत प्रधानता मानी जाती है। जो कवि रहस्यवादी होता है, उसका यह उग्र भाव

और भी अधिक प्रबल रूप धारण करता है, और इसीलिये उसकी कविता कविता-क्षेत्र में और भी अधिक प्रशंसनीय, सारगर्भ तथा उत्तम समझी जाती है।

कविता के जितने विषय हो सकते हैं, उनमें कुछ तो ऐसे भी होते हैं, जो बिलकुल ही साधारण होते हैं, और जिनके बारे में हम लोग लगभग सभी बातें जानते हैं। इस अंश को हम लोग कविता का ज्ञात विषय कह सकते हैं। साधारण श्रेणी के कवियों की कविताओं का विषय प्राय: इसी अंश से लिया जाता है। इसके अतिरिक्त इस संसार में कदाचित् ऐसे विषय भी हों, जिन्हें हम जान ही नहीं सकते। इस भू-मंडल पर ऐसे अनेक दार्शनिक हो गए हैं, और अब भी हैं, जिनका यह विश्वास है कि इस संसार में बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिन्हें हम जान ही नहीं सकते। हर्बर्ट स्पेंसर की 'अज्ञेय-मीमांसा' से सब लोग भली भाँति परिचित हैं। इन सब बातों को हम लोग अज्ञात विषय कह सकते हैं। इन दोनो विषयों के अतिरिक्त एक प्रकार का और भी विषय हो सकता है, जो ज्ञात और अज्ञात के बीच में है। इस विषय के बारे में हम कुछ जानते भी हैं, और कुछ नहीं भी जानते। इसे हम लोग ज्ञात-अज्ञात विषय अथवा अज्ञात-ज्ञात विषय कह सकते हैं। मनुष्य का यह स्वभाव है कि जिन बातों को वह जानता है, उनमें उसका विशेष प्रकार से मन नहीं लगता। इसीलिये ज्ञात विषय से उसका विशेष मनोरंजन नहीं होता, और उसके प्रति उसका ध्यान आकृष्ट नहीं होता। अज्ञात विषयों में भी हम लोगों का मन नहीं लग सकता; क्योंकि हम उनके संबंध में कुछ जानते ही नहीं और हम लोगों के मस्तिष्क में वे सब बातें आ ही नहीं सकतीं। परंतु जिन विषयों के बारे में हम

कुछ जानते भी हैं, और कुछ नहीं भी जानते, उन सबों में हम लोगों का ख़ूब मन लगता है। और, उससे हम लोगों का विशेष मनोरंजन भी होता है। इसीलिये यह विषय कविता के लिये उपयुक्त है। यहाँ तक कि विज्ञान में भी हम लोग एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ से आगे कुछ नहीं दिखलाई पड़ता, जिसके आगे कोई बात समझ में नहीं आती। उस स्थान पर और उस दशा में विज्ञान में भी हम लोगों का तर्क असहाय हो जाता है, और अपनी असमर्थता स्वीकार करता है। जब ऐसी दशा आती है, जब अज्ञात विषय का सामना करना पड़ता है, तब विज्ञान में भी कल्पना आगे-आगे चलती है, और तर्क (Reason) उसका अनुगमन करता है। अज्ञात विषय की बहुत-सी बातों को पहले कवि ही देखता और उनकी ओर संकेत करता है तथा वैज्ञानिक उन्हें सिद्ध करता है। विज्ञान का आधार ज्ञात विषय हैं, किंतु कविता का आधार वे देश और वे क्षेत्र हैं, जहाँ ज्ञात और अज्ञात में संघर्ष होता है, जहाँ ज्ञात और अज्ञात मिलते हैं। यही वह क्षेत्र है, जो सबसे कठिन तथा सबसे अधिक मनोरंजक है, और यही कवि तथा कविता का क्षेत्र है; क्योंकि यहाँ पर कल्पना और भाव, दोनों की आवश्यकता पड़ती है। यहीं पर भाव कल्पना के द्वारा उत्तेजित होता है, और यहीं पर संवेदन तथा कल्पना अकस्मात् कविता का रूप धारण कर लेते हैं। कल्पना तभी उत्तेजित होती है, जब उसका विषय कुछ दूरस्थ होता है, जब उसमें कोई छिपी बात रहती है, जब उसमें कोई गुप्त विषय का समावेश होता है, अर्थात् जब उसमें कोई रहस्य रहता है। जब कविता का विषय कुछ गुप्त रहता है, तभी उसमें कौतूहल उत्पन्न होता है, तभी उसमें आश्चर्य उत्पन्न होता है। इसी गुप्त विषय

के कारण डेलफ़ी के संबंध की कविताएँ प्राचीन काल में यूनान देश में इतनी प्रसिद्ध हो गई थीं।

इसलिये कवियों को अपने विषय के चुनाव में बहुत ही सावधान होना चाहिए, और किसी विषय को चुनने के पहले उन्हें अपने अंतर्जगत् में, उस विषय के संबंध में, सभी दृष्टिकोणों से विचार कर लेना चाहिए, जिस पर वे क़लम उठाते हैं। कवि के अंतर्जगत् में भी ज्ञात, अज्ञात तथा ज्ञात-अज्ञात विषय ही रहते हैं। यह अज्ञात-ज्ञात विषय ही प्रधान तथा श्रेष्ठ कवि का विषय होता है। अँगरेज़ी-भाषा में हाथार्न और पोप ऐसे ही कवि हैं। इन दोनो ने ही साधारण विषयों पर बहुत ही कम कविता की है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि कवियों को सदा ज्ञात-अज्ञात विषय पर ही कविता करनी चाहिए। अभिप्राय केवल यह है कि साधारण विषयों पर कविता करते समय भी कवियों को प्रायः उस अंश की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, जो सबको मालूम नहीं। उदाहरण के लिये हम लोग प्रेम ही को ले सकते हैं। इस संबंध में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रेम एक साधारण ज्ञात विषय है, अथवा अज्ञात-ज्ञात? इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि सभी कविगण प्रेम के बारे में कुछ-न-कुछ अवश्य जानते हैं, और इस दृष्टिकोण से यह एक साधारण ज्ञात विषय है। परंतु इसी प्रेम के बारे में बहुत-सी ऐसी बातें भी हैं, जिनके बारे में हम लोग या तो कुछ नहीं जानते, अथवा जानते तो हैं, परंतु उसे व्यक्त नहीं कर सकते। यही कवि के लिये उचित तथा उपयोगी क्षेत्र है। प्रेम जब कौतूहल उत्पन्न करता है, जब एक रहस्य की तरह मालूम होता है, तभी उसके संबंध की कविता अच्छी मालूम होती है। ज्यों ही प्रेम में कुछ रहस्य

नहीं रह जाता, जब प्रेम एक साधारण बात रह जाता है, तब उसमें कुछ भी आनंद नहीं आता। परंतु जब तक प्रेम एक अज्ञात-ज्ञात विषय का रूप धारण किए रहता है, तब तक उसके संबंध की कविता में बड़ा आनंद मिलता है। यह बात दूसरी है कि कोई-कोई कवि ऐसे कुशल होते हैं, जो साधारण से भी साधारण बातों को रहस्यमय बना देते हैं। ऐसे कवि अपनी कला में बहुत चतुर समझे जाते हैं। वर्ड्सवर्थ की गणना ऐसे ही कवियों में थी। संसार की प्रत्येक वस्तु उस बड़े विषय, उस अनंत ब्रह्म का अंश है, और इसीलिये उनका वास्तविक रूप समझना हम लोगों की बुद्धि के बाहर की बात है। इसीलिये हम लोग प्रत्येक पदार्थ को कविता का विषय बना सकते हैं।

जब कोई कवि अपने विषय में तल्लीन हो जाता है, तो वह अज्ञात-ज्ञात-विषय-संबंधी कविता में भी एक प्रकार के सत्य का आविष्कार करता है। इसे 'कवि का सत्य' या 'काव्य-सत्य' कहते हैं। पहले तो इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह भी एक सत्य है। कुछ लोग कहते हैं, 'कला केवल कला के लिये' है, और कला का आदर्श सुंदरता है, सत्य नहीं। इसलिये कलाविद् कवि सत्य की कुछ भी चिंता नहीं करता, और वह सुंदरता उत्पन्न करने का ही प्रयत्न करता है। परंतु वास्तव में यह बात सच नहीं है; क्योंकि कुछ ऐसे भी कवि पाए जाते हैं, जो कविता में केवल सुंदरता-ही-सुंदरता नहीं, प्रत्युत कल्याण और सत्य भी देखना चाहते हैं। ऐसे कवियों के बारे में उक्त कथन सत्य नहीं है। यदि ऐसे कवियों की कविता में सत्य का अंश मिले, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि इन लोगों का उद्देश्य तथा आदर्श सत्य की खोज भी है।

परंतु ऐसे कवियों की कविता में भी सत्य का अंश मिलता है, जो अपनी कविता में केवल सुंदरता उत्पन्न करने का ही प्रयत्न करते हैं। यह बात रहस्यवादियों के विषय में और भी अधिक सत्य हो जाती है। रहस्यवादी भी ईश्वर के दर्शन के समय सत्य तथा पूर्ण का अनुभव करता तथा उसे समझता है। जब एक बार उसे ईश्वर का दर्शन हो जाता है, और उस दर्शन के बाद उसकी साधारण दशा हो जाती है, तब कभी-कभी वह अपने अनुभव के संबंध में कविता करने लग जाता है, और उस कविता में उस सुंदर दृश्य का वर्णन करता है, जिसका उसने अनुभव कर लिया है। इस प्रकार सुंदरता की उत्पत्ति करने के प्रयत्न में भी वह सत्य का आविष्कार करता है। यूनान तथा भारत में, प्राचीन काल में, इसी प्रकार सत्य के संबंध में इतनी बातें मालूम हो गईं, जो आज तक अध्यात्म-विद्या तथा अन्य किसी दूसरे प्रकार से नहीं मालूम हुईं। जिस विषय में जितना ही अधिक रहस्य होता है, उस विषय में सत्य का आविष्कार भी उतने ही महत्त्व का होता है। इस संसार में जितने गुप्त भेद हैं, जितने रहस्य हैं, उनमें ईश्वर तथा उसका प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव सबसे अधिक कठिन है, सबसे अधिक रहस्यमय है। इसीलिये इसका नाम रहस्यवाद है। रहस्यवाद से संबंध रखनेवाली कविताओं में, यदि कवि का अनुभव वास्तव में सच हो, अवश्य ही सत्य का अंश अधिक रहता है। बहुत लोगों का यह भी कथन है कि रहस्यवादियों की कविता में सत्यं, शिवं और सुंदरं, इन तीनो का पृथक्-पृथक् विश्लेषण न होना चाहिए, क्योंकि उस निरपेक्ष्य क्षेत्र में ये तीनो ही एक हैं। सापेक्ष्य क्षेत्र में ही सत्य, कल्याण और सुंदर भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं। सत्य और

सुंदरता को तो बहुतों ने सर्वदा ही एक माना है। कीट्स कहता है:—"Beauty is truth and truth beauty." अर्थात् सुंदर सत्य है, और सत्य ही सुंदर है। महात्मा गांधी ने भी एक बार एक लेख में लिखा था कि सत्य ही सुंदर है। कुछ लोगों का कथन है कि सत्य और सुंदर, दोनो एक ही पदार्थ हैं, केवल भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से इनके दो नाम पड़ गए हैं। चाहे इनके दो नाम पड़े या तीन, परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि रहस्यवादी कविता में सत्य, कल्याण और सुंदर सब-के-सब पाए जाते हैं, और इस प्रचुरता से कि उतनी अधिकता से और किसी विषय में नहीं। इन सब बातों से स्पष्ट है कि उक्त दृष्टिकोण से रहस्यवाद का विषय कविता के लिये बहुत ही उपयुक्त है।

अभी तक मैंने रहस्य के विषय का एक ही दृष्टिकोण से विचार किया है। परंतु इसका विचार और भी कई दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। यदि विषय की उत्कृष्टता और श्रेष्ठता की दृष्टि से विचार किया जाय, तो भी रहस्यवाद का विषय कविता के लिये सर्वश्रेष्ठ ठहरता है।

रहस्यवाद तथा रहस्यवादी की परिभाषा पहले ही दी जा चुकी है। अब मैं रहस्यवादी कवि तथा छायावादी कवि का दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। थोड़े में ईश्वर का साक्षात् और स्पष्ट दर्शन, उसका तात्कालिक अनुभव तथा ज्ञान ही रहस्यवाद है। जो मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है, जिसके लिये ईश्वर कोई पदार्थ नहीं, प्रत्युत;अनुभव-गम्य विषय हो जाता है, वही रहस्यवादी है। जिसने ईश्वर का दर्शन नहीं कियाँ, जिसने ईश्वर का स्पष्ट अनुभव नहीं किय , जिसके लिये रहस्यवाद—कोई सिद्धांत नहीं, बल्कि एक भावना—नहीं रह गया, वह कभी

रहस्यवादी नहीं हो सकता। मनुष्य जब रहस्यवादी हो जाता है, जब वह ईश्वर का दर्शन पा जाता है, तब भी वह मनुष्य ही रहता है, और कोई ऐसी बाहरी कसौटी नहीं है, जिससे ठीक-ठीक पता चल सके कि अमुक मनुष्य रहस्यवादी है या नहीं। इस विषय में उसके शब्द ही प्रमाण हैं। परंतु संसार के कुछ रहस्यवादी लोग स्पष्ट रूप से ईश्वर के देखने का दावा करते हैं। महात्मा कबीरदासजी वास्तव में एक बहुत ही ऊँचे दर्जे के रहस्यवादी थे। उन्होंने अनेक स्थलों पर ईश्वर को देखने का दावा किया है, और उनका वह दावा उचित ही है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है—

"कहा-सुनी की है नहीं, देखा-देखी बात।"

महात्मा कबीरदासजी ने अनेक अन्य स्थलों पर भी ईश्वर को देखने के संबंध में ऐसी ही बातें लिखी हैं; परंतु उन अवतरणों को उद्धृत करके मैं पुस्तक का आकार नहीं बढ़ाना चाहता। केवल उक्त अंश के उद्धृत करने का मेरा अभिप्राय यह है कि महात्मा कबीरदासजी रहस्यवादी और रहस्यवादी कवि, दोनो ही थे। जब कोई रहस्यवादी अपने इस अनुभव से संबंध रखनेवाली कविता करता है, तो वही वास्तविक रहस्यवादी कवि कहलाता है। इस कथन का यह अभिप्राय है कि रहस्यवादी कवि के लिये रहस्यवादी होना आवश्यक है। इस कथन से यह स्पष्ट है कि जिस कवि ने ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया, जिसने ईश्वर का स्पष्ट रूप से दर्शन नहीं किया, जिसने ईश्वर का अनुभव नहीं किया, वह रहस्यवादी कवि हो ही नहीं सकता।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि रहस्यवादी कवि की इस परिभाषा के अनुसार पूज्य श्रीरवींद्रनाथजी ठाकुर रहस्यवादी

कवि थे या नहीं ? इस प्रश्न की ओर मैंने पहले ही संकेत किया था, और एक इतने बड़े जगत्-प्रसिद्ध कवि को रहस्यवादी कवि न स्वीकार करना सर्वथा अनुचित-सा दृष्टि-गोचर होता है, जिसे संसार-भर के लोग रहस्यवादी कवि स्वीकार करते हैं। बात यह कि अँगरेज़ी में इसके लिये 'मिस्टिक' शब्द का प्रयोग होता है, और इस मिस्टिक शब्द के कई अर्थ हैं। उन अर्थों के अनुसार श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर मिस्टिक अवश्य हैं। परंतु मैंने 'रहस्यवाद' तथा 'रहस्यवादी कवि' शब्दों का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया है, और इसीलिये उसकी परिभाषा भी दे दी है। इन परिभाषाओं के अनुसार रवींद्र बाबू न तो रहस्यवादी हैं, न रहस्यवादी कवि। इस बात को मैं स्वीकार करता हूँ कि रवींद्रनाथ ठाकुर तथा किसी अन्य व्यक्ति को रहस्यवादी तथा रहस्यवादी कवि स्वीकार या अस्वीकार करना मेरी अनधिकार चर्चा है; क्योंकि केवल रहस्यवादी ही इस प्रश्न का यथोचित उत्तर दे सकते हैं। और, मैं रहस्यवादी नहीं हूँ। तथापि, इस वैज्ञानिक युग में भी, हम लोग विश्वास से काम लेते हैं। हम लोगों में से बहुतों ने लंदन नहीं देखा, तथापि हम लोग लंदन के अस्तित्व में अवश्य ही विश्वास करते हैं। इसी प्रकार मेरा यह विश्वास है कि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ने ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव नहीं किया, इसीलिये वह रहस्यवादी कवि नहीं कहे जा सकते। मैं इस बात को भली भाँति जानता हूँ कि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर को रहस्यवादी कवि न स्वीकार करने के लिये बहुत लोग मुझसे रुष्ट होंगे, गालियों कि बौछार करेंगे। यदि किसी के समझाने या किसी के लेखों से मेरे इस मत में कुछ भी परिवर्तन होगा, तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर को रहस्यवादी

न स्वीकार करने का एक प्रधान कारण है। और वह यह है—एक बार श्रद्धेय श्रीसंपूर्णानंदजी ने कलकत्ते के किसी समाचार-पत्र में श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर के विषय में अपने विचार प्रकट किए थे। मैं इस समय ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि यह लेख किस पत्र में तथा कब छपा था। जहाँ तक मुझे स्मरण है, यह लेख 'भारतमित्र' ही में, गर्देजी के संपादकत्व में, छपा था। उस लेख से कम-से-कम मैंने यही अर्थ निकाला था कि श्रद्धेय श्रीसंपूर्णानंदजी की राय में श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर रहस्यवादी नहीं थे। मेरा यह अटल विश्वास है कि श्रीसंपूर्णानंदजी रहस्यवादी हैं, और इस विषय में राय देने के उचित अधिकारी भी। अतएव मुझे इस विषय में लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर रहस्यवादी नहीं थे, और इसलिये वह रहस्यवादी कवि हो ही नहीं सकते। हिंदी-भाषा में महात्मा कबीरदासजी रहस्यवादी तथा रहस्यवादी कवि, दोनो ही थे। बहुत-से ऐसे रहस्यवादी हैं, जो कविता नहीं करते, अतएव वे रहस्यवादी कवि नहीं कहे जा सकते। ऐसा भी संभव है कि एक मनुष्य रहस्यवादी तो हो, परंतु उसकी कविता रहस्यवादी कविता न हो। यह तभी हो सकता है, जब कोई रहस्यवादी साधारण विषयों पर कविता करता हो, और अपने ईश्वरीय अनुभव तथा दर्शन आदि विषयों पर कविता न करता हो। रहस्यवादी कवि होने के लिये कविता का विषय भी ईश्वरीय दर्शन, अनुभव तथा आनंद आदि होना चाहिए। ऐसा देखा गया है कि प्रायः रहस्यवादी लोग अपनी कविता में लाक्षणिक शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं। और, कभी-कभी तो उनको लाचार होकर ऐसा करना ही पड़ता है। रहस्यवादियों का अनुभव एक प्रकार से दूसरे संसार का होता है,

और उस अनुभव को वे इस संसार की भाषा की सहायता से व्यक्त करना चाहते हैं। ऐसा करने में उन्हें कई कठि-नाइयों का सामना करना पड़ता है, और ये सब शब्द उनके अर्थ को ठीक-ठीक प्रकट नहीं कर सकते। तथापि अपने उन अनुभवों को वे इन्हीं शब्दों की सहायता से व्यक्त करने के लिये विवश हो जाते हैं। ऐसी दशा में उनकी भाषा स्वभावतः लाक्षणिक हो जाती है, और तब इस बात का निश्चय करने में और भी अधिक कठिनाई पड़ती है कि अमुक कविता रहस्यवादी कविता है या नहीं। इन्हीं कठिनाइयों के कारण कुछ लोग हिंदी में ऐसा भी समझने लग गए हैं कि जो कविता कठिन होती तथा लाक्षणिक भाषा में लिखी जाती है, वही रहस्यवादी कविता है। परंतु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। रहस्यवादी कविता सुगम-से-सुगम भी हो सकता है, और हुई भी है।

परंतु रहस्यवादी कविता का कभी-कभी कठिन भी हो जाना स्वाभाविक ही है। सब दार्शनिक लोग इस बात को मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं कि ईश्वर का अनुभव अनिर्वचनीय है, वह शब्दों की सहायता से कहा ही नहीं जा सकता। यही कारण है कि पाश्चात्त्य देश का एक दार्शनिक कहता है—"ईश्वर का दर्शन तथा अनुभव अवश्य अनिर्वचनीय होना चाहिए; क्योंकि जो ईश्वर शब्दों द्वारा कहा जा सकता है, वह परिमित और सांत (अंत के सहित) हो जाता है। ऐसे ईश्वर को मैं ईश्वर मान ही नहीं सकता।" यही कारण है कि हमारे धर्मशास्त्रों में लोगों ने ईश्वर को 'नेति-नेति' कहकर पुकारा है। जब कोई रहस्यवादी ऐसे गूढ़ विषय के बारे में कविता करता है, तो उसका कभी-कभी कठिन हो जाना स्वाभाविक ही है।

संसार के कवियों का विभाग भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से भिन्न-भिन्न हो सकता है। परंतु एक दृष्टिकोण से उनको दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—वास्तविकता के प्रेमी (Realistic Poets) और आदर्शवादी (Idealistic Poets)। कवि चाहे वास्तविकता का प्रेमी हो अथवा आदर्शवादी, उसे कल्पना की सहायता अवश्य लेनी पड़ती है। बहुत लोगों का विचार है कि यह कल्पना ही कविता की जान है। कविता में कल्पना का बड़ा ऊँचा स्थान है। इसीलिये कुछ लोगों ने इसे मस्तिष्क की आँख कहा है; क्योंकि मस्तिष्क भी देखता है। यह कल्पना दर्शक तथा कवि की एक प्रधान इंद्रिय है। सच्चा कवि वही है, जो इस दूसरी आँख से युक्त हो। बहुत लोगों का यहाँ तक कहना है कि जिस कविता में कल्पना नहीं है, वह वास्तविक कविता ही नहीं। जब कविता में कल्पना को इतना ऊँचा स्थान प्राप्त है, तब उस कवि की कविता को रहस्यवादी कविता का पद प्राप्त हो सकता है या नहीं, जो वास्तव में रहस्यवादी नहीं है, किंतु कल्पना द्वारा अपने को एक सच्चे रहस्यवादी के स्थान पर रखता और तब कविता करता है? जो कवि वास्तविकता के प्रेमी हैं, वे तो पहले स्वयं उन बातों का अनुभव कर लेते हैं, जिन पर कविता करते हैं, और जो आदर्शवादी हैं, वे कल्पना द्वारा भी बहुत कुछ लिखते हैं। कल्पना के भी दो भेद हैं—एक तो वह, जो स्वयं होती है, और दूसरी वह, जो प्रयत्न का फल है। इन दोनो में पहली कल्पना सच्ची तथा दूसरी झूठी है। यदि किसी कवि की कल्पना ही झूठी है, तो वह कभी रहस्यवादी कवि नहीं कहा जा सकता। परंतु प्रश्न तो यह है कि यदि किसी

कवि की कल्पना सच्ची हो, और यदि वह कवि अपने को एक रहस्यवादी के स्थान पर रखकर कल्पना द्वारा कविता करे, तो वह रहस्यवादी कवि कहा जायगा या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले हम लोगों को इसका अर्थ समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि कोई कवि अपने को रहस्यवादी के स्थान पर रखता और तब कविता करता है, तो उस समय उसकी वास्तव में क्या दशा होती है? क्या वह सचमुच एक सच्चे रहस्यवादी के समान हो जाता है?

क्या उस समय कवि की ठीक-ठीक वही दशा होती है, जो एक सच्चे रहस्यवादी की, अनुभव के समय, होती है? यदि इन प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक दिया जा सकता है, अर्थात् यदि कवि की ठीक-ठीक वही दशा होती है, जो रहस्यवादी की, तो फिर वह कवि भी रहस्यवादी ही हो जाता है, और उसकी कविता भी रहस्यवादी कविता कहलावेगी। परंतु यदि कल्पना द्वारा, अथवा और किसी तरह से भी, कवि उन सब बातों का ठीक-ठीक अनुभव नहीं करता, और फिर भी रहस्यवादी के अनुभव से संबंध रखनेवाले विषयों पर कविता करता है, तो वह रहस्यवादी कवि नहीं कहला सकता। तब उसे हम छायावादी कवि कह सकते हैं। इस संबंध में एक यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कोई कवि केवल कविता करते-करते ही रहस्यवादी हो सकता है? क्या यह संभव है कि एक कवि कविता करते-करते ही ईश्वर का दर्शन पा जाय, और उसका यथार्थ अनुभव कर सके? इस प्रश्न पर विस्तृत रूप से मैं पीछे विचार करूँगा। यहाँ इतना लिख देना ही पर्याप्त होगा कि हाँ, यह संभव है। यदि यह संभव न होता, तो कविता का

उद्देश्य ही इतना ऊँचा न रह जाता। कवियों में तल्लीनता की मात्रा बहुत ही अधिक होती है; एक सच्चा कवि ईश्वर में प्रतिदिन तल्लीन हो सकता है। और, इसी प्रकार अभ्यास करते-करते वह ईश्वर का अनुभव कर सकता है। यदि कविता द्वारा कोई कवि ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव कर सकता है, तो वह रहस्यवादी हो जाता है, और उसकी कृति रहस्यवादी कविता अवश्य ही कहलावेगी। किंतु यदि उसे ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव नहीं हुआ, परंतु उसके अस्तित्व में विश्वास हो गया है, उसकी विभूतियों में भी वह विश्वास करता है, ईश्वर के दर्शन तथा उसका अनुभव करने की इच्छा रखता है, और ईश्वर के दर्शन तथा अनुभव के संबंध में कविता करता है, तो उसकी उस कविता को छायावादी कविता कहते हैं। जिसे ईश्वर का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाया, जिसे ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव नहीं हुआ, परंतु जिसे इन सब बातों में विश्वास है, उसे छायावादी कहते हैं। रहस्यवादी ईश्वर के रहस्य से भली भाँति परिचित हो जाता है; पर छायावादी को ईश्वर की छाया का पता चलता है, ईश्वर की वास्तविकता का नहीं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि रहस्यवादी कवि और छायावादी कवि, दोनो का विषय एक ही होता है। दोनो का ही विषय ईश्वर का स्पष्ट दर्शन उसका अनुभव तथा उस अनुभव का आनंद आदि होता है। परंतु दोनो की अनुभूति में अंतर होता है। रहस्यवादी कवि ईश्वर का स्पष्ट दर्शन तथा अनुभव करता है, और छायावादी कवि को ईश्वर की छाया ही का पता चलता है। मैंने 'रहस्यवादी कवि' और 'छायावादी कवि' शब्दों का प्रयोग इन्हीं दो भिन्न-भिन्न अर्थों में किया

है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि केवल कविता को देखकर यह निश्चय करना बड़ा कठिन हो जाता है कि यह कविता रहस्यवादी कविता है अथवा छायावादी कविता? यह कठिनाई इस बात से और भी अधिक बढ़ जाती है कि दोनो के विषय एक हैं—यदि इस बात को स्वीकार कर लें कि एक सच्चा रहस्यवादी है, और उसने अपनी कविता में ईश्वर के अनुभव के आनंद (ब्रह्मानंद) का वर्णन किया है। यदि कोई दूसरा एक ऐसा मनुष्य हो, जिसे ईश्वर का कुछ भी अनुभव न हो, और जिसने केवल इतना सुन लिया हो कि ईश्वर के अनुभव में आनंद प्राप्त होता है, तो वह मनुष्य भी ईश्वर के अनुभव के आनंद के विषय पर कविता कर सकता है। और, यदि वह एक ऊँचे दर्जे का कवि है, तो यह भी संभव है कि उस मनुष्य की कविता एक सच्चे रहस्यवादी की कविता से श्रेष्ठ भी हो जाय। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है, ऐसी दशा में किस प्रकार यह प्रश्न हल हो सकता है कि एक रहस्यवादी है और दूसरा छायावादी? वास्तव में यह बड़ा कठिन प्रश्न हो जाता है, और इसी कारण से जब कोई सच्चा रहस्यवादी भी हो जाता है, तब भी लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं, उसे झूठा ही मानते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः यह भी देखा गया है कि कभी-कभी एक झूठा मनुष्य भी रहस्यवादी बन जाता है, परंतु असलियत अंत में अवश्य ही खुल जाती है, और इसके लिये कई कसौटियाँ भी हैं, जिनका उल्लेख दूसरे स्थान पर किया जायगा।

❀ ❀ ❀

इस संसार में बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं या रहती हैं, जिनके बारे में हम लोग कुछ नहीं जानते। इसीलिये इँगलैंड

का प्रधान कवि शेक्सपियर कहता है—"There are more things in this world Horatio ! than your philosophy dreams of." अर्थात् ऐ होरेशियो, इस संसार में उनसे बहुत ही अधिक चीज़ों का अस्तित्व पाया जाता है, जिनका वर्णन तुम्हारे दर्शन में है।

इस संसार में बहुत-सी ऐसी भी बातें हैं, जिनके बारे में हम लोग बहुत कम जानते हैं ; अर्थात् इस संसार की कुछ बातें हम लोगों के लिये रहस्य ही रहती हैं। परंतु संसार के सब रहस्यों में ईश्वर का रहस्य सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे कठिन है। इस रहस्य के खुल जाने पर और सब रहस्य अवश्य ही खुल जाते हैं, और कोई संदेह की बात नहीं रह जाती। पाश्चात्त्य देशों में इस भारी रहस्य के जाननेवालों का बड़ा मान है, और जो इस रहस्य के सबंध में कविता करता है, वह बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। पाश्चात्त्य देशोंवाले यह भी मानते हैं कि कविता के द्वारा भी यह रहस्य खुल सकता है, और ईश्वरीय कविता में अधिक तल्लीन होने से भी ईश्वर का दर्शन तथा अनुभव हो सकता है। यही कारण है कि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर का पाश्चात्त्य देशों में इतना नाम है, और उनको 'नोबेल-पुरस्कार' भी मिला है। मैंने अँगरेज़ी की ऐसी कई पुस्तकें पढ़ी हैं, जिनमें अँगरेज़ लेखकों ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया है कि कविता से भी ईश्वर का दर्शन तथा अनुभव हो सकता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कविता से भी ईश्वर का दर्शन हो सकता है? क्या हम लोगों के यहाँ भी ऐसी कोई बात मानी जाती है? क्या कविता से ईश्वर का दर्शन होना भारतवर्ष भी स्वीकार करता है?

जिन लोगों ने संस्कृत का थोड़ा भी अध्ययन किया है, वे

भली भाँति जानते हैं कि संस्कृत-साहित्य में इसके बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। वेदांतियों ने जिसे ब्रह्म कहा है, योगियों ने जिसे ईश्वर माना है, शैवों ने जिसे शिव जाना है, और अनेक शास्त्रों ने जिसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है, उसी को भारत के काव्य-मर्मज्ञों ने पहले रस कहा था। वे लोग काव्य से मुक्ति का प्राप्त होना भी मानते थे। व्याकरण में जो स्फोट है, साहित्य में वही रस है। जैसे सब शास्त्रों में मुक्ति का वर्णन है, तथा उसके प्राप्त करने का उपाय है, इसी प्रकार साहित्य-कला से मुक्ति का प्राप्त करना संभव माना गया है। यही कारण है कि त्यागी तथा महात्मा भर्तृहरि ने कहा है—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः;
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।

इस श्लोक में तो महात्मा भर्तृहरि ने साहित्य न जाननेवाले की केवल निंदा ही की है, परंतु उन्होंने स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा कि इससे मुक्ति भी हो सकती है। किंतु अग्निपुराण में यह बात स्पष्ट रूप से लिख दी गई है। अग्निपुराण में बहुत-सी बातें कही गई हैं। अग्निपुराण में अलंकार-शास्त्र का भी बहुत ही अच्छा वर्णन किया गया है। ३३६वें अध्याय से ३४६वें अध्याय तक इसी अलंकार-शास्त्र का वर्णन है। जब मैं यह कहता हूँ कि अग्निपुराण में अलंकार-शास्त्र का अच्छा वर्णन है, तब मेरा अभिप्राय अलंकारों से नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी-भाषा के अधिक शब्द संस्कृत से ही

आए हैं। परंतु इनमें से कई शब्दों के अर्थों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। इसी प्रकार संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का अर्थ तथा महत्त्व हिंदी के अलंकारिकों ने कभी नहीं समझा। संस्कृत का अलंकार-शास्त्र वास्तव में एक दर्शन है। परंतु हिंदी में कोई क्रमबद्ध अलंकार-शास्त्र है ही नहीं। हिंदी में कुछ असंबद्ध अलंकारों के समूह अवश्य हैं। अग्निपुराण में 'अलंकार-शास्त्र' का प्रयोग सौंदर्य-शास्त्र के अर्थ में भी किया गया है, जैसा कि उसके अवतरणों से स्पष्ट विदित होता है। यहाँ पर मैं अग्निपुराण तथा उसके अलंकार-शास्त्र का वर्णन नहीं कर रहा हूँ, अतएव इस विषय में अधिक लिखना अनावश्यक है। किंतु यहाँ मैं यह दिखलाना अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूँ कि रहस्यवाद का विचार अग्निपुराण में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। अग्निपुराण के इस प्रमाण से स्पष्ट हो जायगा कि रहस्यवादी कविता के जन्मदाता श्रीरवींद्र बाबू नहीं हैं। इस प्रमाण से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि रहस्यवाद-संबंधी तथा छायावाद-संबंधी कविता करना पाप नहीं है, और पुराण भी इसका समर्थन करता है। वह प्रमाण यह है—

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम् ;
वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ।
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन ;
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ।

(अग्निपुराण)

ऊपर के श्लोकों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि अज, आनंद-स्वरूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति ही का नाम चमत्कार या रस है।

यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो रहस्यवाद की यह दूसरी तथा दूसरे शब्दों में परिभाषा ही है। भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। इस बात को संसार-भर के विचारशील पुरुषों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि भारतवर्ष के लोग धर्म की अधिक चिंता करते हैं, और इसीलिये मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न भी अधिक करते हैं। यही कारण है कि इनके प्रत्येक दर्शन में मोक्ष प्राप्त करने का वर्णन अवश्य रहता है। भारतवर्ष वह देश है, जहाँ व्याकरण शास्त्र में भी मोक्ष प्राप्त करने के साधन का वर्णन है। इसी प्रकार भारत में काव्य तथा साहित्य से भी ये लोग मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। ब्रह्म का अनुभव ही अग्निपुराण में रस माना गया है, और यह न्याय-संगत भी है। जब ब्रह्म का अनुभव होगा, तभी मनुष्य को मोक्ष मिल सकता है; क्योंकि तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

उपनिषद्-काल में भी भारत रहस्यवाद से भली भाँति परिचित था। तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है - "रसो वै सः"। इसके अर्थ पर विचार करने से भी स्पष्ट मालूम हो जाता है कि इस वाक्य का कहनेवाला अवश्य ही रहस्यवादी था। संस्कृत के अन्य ग्रंथों से भी कई और अंश उद्धृत किए जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि रहस्यवाद कोई नई चीज़ नहीं है। श्रीभागवत पुराण तथा श्रीमद्भगवद्गीता में इसके अनेकों उदाहरण पाए जाते हैं। 'तत्त्वमसि' और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि वाक्य बहुत ही प्राचीन हैं।

❀ ❀ ❀

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में ब्रह्म के अनुभव को ही लोग रस कहते थे। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि आदि-रस किसे मानना चाहिए? इस

प्रश्न का रहस्यवाद के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है, इसलिये इसका अत्यंत संक्षिप्त वर्णन कर दिया जाता है—

धर्मदत्त-नामक संस्कृत के एक विद्वान् ने अद्भुत रस को ही आदि तथा एक रस स्वीकार किया है, जैसा कि निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट होगा—

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते ;
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः ।

अर्थात् सब रसों का सार चमत्कार है, और इस कारण सब जगह अद्भुत रस की ही प्रतीति होती है ।

परंतु अधिक लोगों ने शृंगार-रस को ही आदि तथा प्रधान माना है । मैं समझता हूँ, इस संबंध में किसी विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं; क्योंकि हिंदी के दो-एक ग्रंथों में भी इसका उल्लेख कर दिया गया है ।

शृंगार को आदि-रस माननेवाले ग्रंथों में भोजराज का शृंगार-प्रकाश प्रधान है । सुना है, इसमें लगभग तीस हज़ार श्लोक हैं । अभी तक यह ग्रंथ प्रकाशित न हो सका । मदरास-सरकार के पुस्तकालय में इसकी हस्त-लिखित प्रति विद्यमान है । कुछ लोग करुण-रस को भी आदि तथा एकमात्र रस मानते थे । भवभूति का 'एको रस: करुण एव' इत्यादि श्लोक बहुत ही अधिक प्रसिद्ध है, और इस बात को सिद्ध करता है कि करुण-रस को भी कुछ लोग एक-मात्र तथा आदि-रस मानते थे ।

कुछ वैष्णव-मतावलंबी भक्ति को भी रस मानते हैं, भाव नहीं । श्रीभागवत पुराण की एक टीका में इस विषय पर बहुत ही विस्तृत वाद-विवाद किया गया है कि भक्ति भाव है या रस । कुछ वैष्णव लोग भक्ति को भी रस मानते हैं । वे इसे एक-

मात्र तथा आदि-रस मानते हैं। काश्मीर में कुछ शैव हैं। इनमें कुछ ऐसे भी आलंकारिक हैं, जो शांत-रस को ही आदि-रस मानते हैं। बाबू भगवानदासजी ने अँगरेज़ी में 'भावों का विज्ञान' (The Science of Emotions) नामक एक ग्रंथ लिखा है। इस पुस्तक से भी लगभग यही ध्वनि निकलती है कि शांत-रस ही आदि तथा प्रधान रस है। रहस्यवादियों के अनुभव भी शांत-रस को ही आदि-रस मानने के लिये संकेत करते हुए मालूम पड़ते हैं। इस अनुभव के अनुसार 'रसो वै सः' ही ठीक है। इस प्रकार कविता तथा दर्शन का मेल हो जाता है, और काव्य, कला तथा दर्शन परस्पर उसी तरह से नहीं लड़ते, जैसे आजकल हिंदू और मुसलमान सिर-फुटौवल करते हैं, किंतु भाई-भाई की तरह एक दूसरे से प्रेम-पूर्वक हाथ मिलाते हैं। केवल इतना ही नहीं, धर्म भी तब कविता का मित्र हो जाता है, और दर्शन-धर्म तथा काव्य, तीनो से एक ही फल की प्राप्ति होती है; क्योंकि तीनो का अंतिम उद्देश्य ब्रह्म का दर्शन तथा उसका अनुभव करना ही है।

❀ ❀ ❀

ऊपर इस बात का वर्णन किया गया है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में भी रहस्यवाद का प्रचार था, और ब्रह्मानंद को ही अग्निपुराण तथा उपनिषद् ग्रंथों में रस कहा है। परंतु धीरे-धीरे कवियों तथा साहित्य-मर्मज्ञों के भाव इस संबंध में बदलने लगे, और साहित्य के रस ने अपना एक स्वतंत्र रूप धारण कर लिया। ऐसा करने में साहित्य के रस और उपनिषदों के रस में बहुत अंतर पड़ गया। हिंदी में साहित्य की सब बातें प्रायः संस्कृत से ही ली गई हैं। परंतु संस्कृत में जो स्वतंत्र

विचार थे, वे हिंदी में पूर्ण रूप से कभी नहीं आने पाए। हिंदी के रसों में यह गड़बड़ी और भी विकट रूप धारण कर लेती है, और यह रस तथा ध्वनि आदि का विषय हिंदीवालों के लिये हौआ ही बना रहा है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि हिंदी में रस तथा अन्य साहित्य-विषय के आचार्य हुए ही नहीं। मतलब यही है कि इनके ग्रंथों में रस आदि विषयों का यथोचित वर्णन नहीं है। केशवदास, भिखारीदास, देवदत्त तथा मतिराम आदि हिंदी के आचार्यों ने साहित्य पर ग्रंथ लिखे हैं। परंतु इन सब लोगों के ग्रंथों में वह परिपक्वता, वह विचार-पूर्णता, वह विचार-स्वतंत्रता नहीं पाई जाती, जो संस्कृत-ग्रंथों के लेखकों में पाई जाती है। रस पर तो हिंदी-भाषा में अब भी कोई प्रधान ग्रंथ नहीं मिलता। रस का विषय इतना व्यापक तथा गंभीर है कि संस्कृत के लेखकों में भी इस संबंध में मतभेद है। इसमें भी लेश-मात्र संदेह नहीं कि संस्कृत में जो ग्रंथ पीछे लिखे गए हैं, उनमें रस का प्रयोग उसी अर्थ में नहीं किया गया, जिस अर्थ में उपनिषद् के लेखकों ने किया था। हम यह पहले ही दिखला चुके हैं कि अग्निपुराण तथा उपनिषदों में 'रस' का प्रयोग 'ब्रह्म के अनुभव' के अर्थ में ही किया गया है। अब हम साहित्य-दर्पण के कुछ अवतरणों को उद्धृत करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य-दर्पण में रस का प्रयोग स्पष्ट रूप से इस अर्थ में नहीं किया।

साहित्य-दर्पण में रस की परिभाषा यह है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा ;
रसतामेति इत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम् ।

अर्थात् सहृदयों के हृदय में रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से व्यक्त होकर रस के रूप को प्राप्त होते हैं।

रस की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि इसमें ब्रह्म के अनुभव की कुछ भी चर्चा नहीं है। इसके बाद साहित्य-दर्पण में लिखा है—

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ;
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः ;
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।

अर्थात् रस से सतोगुण बढ़ता है। यह अखंड, स्वय प्रकाशमान, आनंदमय और चमत्कारमय है। रस की उत्पत्ति के समय दूसरे विषय का स्पर्श तक नहीं होता, अतएव यह ब्रह्म के स्वाद के समान होता है। यह अलौकिक चमत्कार है। उस रस का कोई पूर्वजन्म का पुण्यात्मा ही अपने आकार की तरह अभिन्न रूप से स्वाद लेता है।

इन श्लोकों में भी स्पष्ट रूप से रस का ब्रह्म के अनुभव के साथ कोई विशेष संबंध नहीं स्थापित किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि रस के स्वाद को ब्रह्मानंद के समान ही कहा है। परंतु इसके पढ़ने से यही पता चलता है कि यह बात रस की प्रशंसा में ही कही गई है, और रस की ब्रह्मानंद के साथ समता दिखलाना इसका प्रधान उद्देश्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त उक्त श्लोक में रस को ब्रह्मानंद के समान कहा है, इसलिये रस और ब्रह्मानंद, दोनो एक नहीं रह जाते। इससे स्पष्ट है कि साहित्य-दर्पण में 'रस' शब्द का प्रयोग ब्रह्म के अनुभव के अर्थ में नहीं किया गया है।

साहित्य-दर्पण में दूसरे स्थल पर लिखा है—

पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससन्ततिम् ।

अर्थात् जैसे कोई-कोई योगी लोग ब्रह्म का अनुभव करते हैं, इसी प्रकार कोई-कोई पुण्यात्मा पुरुष ही रस का स्वाद लेते हैं।

इस श्लोक से भी यही पता चलता है कि जिस ब्रह्म का योगी लोग अनुभव करते हैं, वह रस नहीं है। इसलिये ब्रह्म के अनुभव और रस में भेद है। इन कथनों से स्पष्ट है कि साहित्य-दर्पण के रस और ब्रह्म के अनुभव में अंतर है। परंतु ब्रह्म का अनुभव वेदांत-शास्त्र का सिद्धांत है, इसलिये साहित्य-दर्पण और वेदांत-शास्त्र परस्पर लड़ जाते हैं। परंतु उपनिषद्-काल के रस की परिभाषा के अनुकूल वेदांत-शास्त्र भी काव्य का समर्थन करता है; क्योंकि कविता तथा शास्त्र, दोनो के द्वारा उसी एक ही ब्रह्म का अनुभव होता है। ऐसी दशा में वेदांत-शास्त्र काव्य का समर्थन करता है, और दोनो के अंतिम उद्देश्य में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। रस की इस परिभाषा से रहस्यवाद की पुष्टि हो जाती है, और रहस्यवाद कोई नवीन विषय नहीं रह जाता। यही कारण है कि विष्णु-पुराण में काव्य को विष्णु का अंश ही स्वीकार किया गया है, जैसा कि निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट होगा—

काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च;

शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः ।

अर्थात् सब काव्य और संपूर्ण गीत शब्द-रूपधारी भगवान् विष्णु के अंश हैं।

इन सब बातों से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के लोग रहस्यवाद से भली भाँति परिचित थे, और दर्शन तथा कविता में पूर्ण रूप से मेल था। यही कारण है कि काव्य-मर्मज्ञों के आगे मोक्ष का भी प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं कि जो व्यक्ति कविता की सहायता से रहस्यवादी होगा, उसे मोक्ष की प्राप्ति भी अवश्य ही हो जायगी। यही कारण है कि प्राचीन काल में काव्य से भी लोग मोक्ष की प्राप्ति मानते थे, यद्यपि पीछे आकर संस्कृत-ग्रंथों में भी काव्य का यह रूप बहुत लोग भूल गए, तथापि, उस दशा में भी, इन लोगों ने काव्य से मोक्ष की प्राप्ति मानना कभी नहीं छोड़ा। मैंने ऊपर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि साहित्य-दर्पण में भी काव्य का वह प्राचीन रूप नहीं पाया जाता। तथापि ग्रंथ के आरंभ में ही विश्वनाथ कविराज ने लिखा है —

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ;
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।

अर्थात् केवल काव्य से ही कम बुद्धिवालों को भी आनंद से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारो फलों की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये काव्य के लक्षण का निरूपण करते हैं।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि साहित्य-दर्पणकार का, रस की उन परिभाषाओं के रहने से, काव्य को मोक्ष-प्राप्ति का साधन मानना कहाँ तक युक्ति-संगत है ? इस प्रश्न पर मैं दूसरे स्थल पर विचार करूँगा ; परंतु यहाँ इतना लिखना अनुचित न होगा कि जिस कवि का जीवन नख-शिख-वर्णन ही में चला गया, जिस कवि ने जीवन-भर दूसरे कवियों के भावों की

चोरी में ही लगा दिया, जिसके हृदय में पवित्र भावों ने कभी स्थायी रूप से डेरा नहीं डाला, उसे मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। वह ब्रह्मानंद का अधिकारी है ही नहीं। जिन कवियों के हृदय में कभी पवित्र भाव उत्पन्न ही नहीं हुए, जो कवि 'शोहदे' कहे जा सकते हैं, जिन कवियों की कृतियों का आधार उनकी अपवित्र भावनाएँ हैं, भला, उनकी कविता से मन में उच्च भाव कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? भला उनकी कविता से मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? यह तो सर्वथा असंभव है। यदि किसी भी कविता से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, तो रहस्यवादी कविता उसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। लगभग इसी बात का समर्थन गोस्वामी तुलसीदास-जी ने भी अपनी रामायण में यों किया है—

स्याम सुरभि, पय बिसद अति. गुनद करहिं तेहि पान ;
गिरा ग्राम सिय-राम-जस गावहिं, सुनहिं सुजान।

तैसहि सुकबि कबित बुध कहहीं ; उपजहिं अनत, अनत छबि लहहीं।
भक्ति-हेतु बिधि-भवन बिहाई ; सुमिरत सारद आवत धाई।
रामचरित - सर बिनु अन्हवाए ; सो स्रम जाय न कोटि उपाए।
कबि-कोबिद अस हृदय बिचारी ; गावहि हरिगुन कलिमलहारी।
कीन्हे प्राकृत - जन - गुन - गाना ; सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।

रहस्यवादियों की कुछ विशेषताएँ

रहस्यवादी लोग अंतिम सत्य अर्थात् ईश्वर का अनुभव करने का दावा करते हैं। ये लोग यह भी कहते हैं कि ईश्वर का अनुभव कर लेने पर भी, ब्रह्मानंद का अनुभव कर लेने पर भी, मनुष्य एक सांत और परिमित जीव रहता है, और संयोगावस्था में वह अनंत का अनुभव करता तथा उसे समझता है। मनुष्यों के भीतर एक ऐसी शक्ति काम करती रहती है. जो सर्वदा पूर्ण तथा कल्याण की ओर खींचती रहती है, और रहस्यवादी के पूर्ण अनुभव की दशा ही उस शक्ति की अंतिम सीमा है। रहस्यवादियों के अनुभव से धर्म के विकट प्रश्न भी हल हो जाते हैं। अब हम लोग रहस्यवाद की प्रधान दशाओं का वर्णन करेंगे; क्योंकि यह अत्यंत आवश्यक है। रहस्यवाद के प्रधान लक्षणों का वर्णन करने से सत्य का अर्थ भी अधिक स्पष्ट हो जायगा। परंतु ऐसा करने में हमें बहुत ही संक्षिप्त वर्णन करना पड़ेगा; क्योंकि रहस्यवादियों के अनुभव भिन्न-भिन्न और कई प्रकार के होते हैं। रहस्यवाद का वर्णन करना, अतीत, परमोत्तम, इंद्रियातीत तथा शाश्वत क्रम का वर्णन करना है। यह अनुभव मस्तिष्क के उस अंश से संबद्ध रहता है, जो अमर तथा इन इंद्रियों के अनुभव से परे है। यह न भूलना चाहिए कि रहस्यवादी का अनुभव पूर्ण होता है। इस अनुभव से संसार-भर के कवियों, कलाविदों, दार्शनिकों, धार्मिकों तथा संतों ने सहायता ली है। यही अनुभव उनकी अमरता तथा उनकी अंतःप्रेरणा का प्रायः कारण हुआ है। रहस्यवादियों

का अनुभव ही संसार के कुछ श्रेष्ठ कवियों की कविता का मूल तथा प्रधान स्रोत बन गया है। कितने ही दार्शनिकों तथा धार्मिकों के सिद्धांतों की अमर भित्ति उनका रहस्यवाद-संबंधी अनुभव ही है। कितने ही संतों की तो यह जान ही है। रहस्यवाद के सिद्धांतों के समझने, लिखने तथा उस पर विचार करने के लिये भी रहस्यवादियों की ही अधिक आवश्यकता है; क्योंकि दूसरे लोग न तो इसे भली भाँति समझ सकते हैं, और न इस पर अच्छी तरह से लिख ही सकते हैं। यही कारण है कि इस संबंध में बहुत मतभेद पाया जाता है। इस मतभेद का प्रधान कारण यह है कि अभी संसार में जितने रहस्यवादी हो गए हैं, उनकी संख्या बहुत ही कम है। यह भी संभव है कि इन इने-गिने रहस्यवादियों में भी कुछ लोगों का अनुभव वास्तविक न होकर केवल भ्रमात्मक ही हो। इसके अतिरिक्त रहस्यवाद के विषय में लिखनेवाले भी कुछ रहस्यवादी नहीं हैं। इसलिये रहस्यवाद के विषय में मतभेद होना आवश्यक है। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी हम रहस्यवाद —सत्य रहस्यवाद—के प्रधान लक्षण लिखने का साहस कर रहे हैं। रहस्यवाद भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। रहस्यवाद के ये रूप या आकार क्रमानुसार लिखे जाते हैं; परंतु इन क्रमों में पहले का आशय यह नहीं कि वह दूसरे से प्रसिद्ध है। ये क्रम किसी दृष्टिकोण से नहीं लिखे गए हैं।

❀ ❀ ❀

रहस्यवादियों का यह अनुभव बहुत ही आकस्मिक होता है। अधिक लोगों का विचार है कि यह आकस्मिकता ऊपरी है। यदि रहस्यवादियों का यह अनुभव वास्तव में मनुष्यों के

विकास का सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे ऊँचा उदाहरण है, तो, जीवन-विद्या के एक प्रधान सिद्धांत के अनुसार, इसे अवश्य ही आकस्मिक और अनपेक्षित होना चाहिए। जीवन-विद्या (Biology) के जाननेवाले परिवर्तनवाद को स्वीकार करते हैं। उस परिवर्तनवाद के सिद्धांत के अनुसार रहस्यवादियों के अनुभव की आकस्मिकता तथा अनपेक्षिता ठीक ही है। जब हम कहते हैं कि रहस्यवादियों का यह अनुभव आकस्मिक होता है, तब हमारा यह अभिप्राय नहीं होता कि हम लोगों के भूत-काल के अनुभव में एक ऐसे अनुभव का समावेश हो जाता है, जो सब तरह से बिलकुल नया रहता है। कोई भी परिवर्तन ऐसा नहीं होता। परिवर्तनवाद के सिद्धांत के अनुसार भी हम लोगों का अनुभव अधिक विस्तृत हो जाता है, हम लोगों के अनुभवों के गुण में परिवर्तन हो जाता है, और यह परिवर्तन अचानक, बहुत शीघ्र तथा आकस्मिक होता है। हम लोगों की इंद्रियों तथा शक्तियों में बहुत अधिक गुणात्मक तथा विस्तारात्मक परिवर्तन हो जाता है।

रहस्यवादियों के इस अनुभव को समझाने के लिये हम लोग भौतिक संसार से उदाहरण ले सकते हैं। मान लीजिए, बरफ़ का एक टुकड़ा यहाँ रक्खा है, और यह भी मान लीजिए कि उसका ताप-क्रम इस समय एक अंश है। अब इसमें और अधिक गरमी पहुँचाइए। मान लीजिए अब उस बरफ़ के टुकड़े का ताप-क्रम दो अंश हो गया। इस दशा में भी बरफ़ के टुकड़े में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ेगा। इस बरफ़ को और भी अधिक गरम करते चले जाइए। बरफ़ के टुकड़े में गरमी की मात्रा प्रतिक्षण बढ़ती चली जायगी; परंतु तो भी बरफ़ के टुकड़े के गुणों में कुछ विशेष अंतर नहीं पड़ेगा, जब तक उसका ताप-

क्रम ३२ अंश न हो जाय। परंतु जब उस बरफ़ के टुकड़े का ताप-क्रम ३२ अंश हो जाता है, तब एक प्रकार का भौतिक परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है, और तब बरफ़ एक ठोस पदार्थ नहीं रहती; किंतु एक द्रव (जल की तरह चीज़) पदार्थ का रूप धारण कर लेती है। इसी को भौतिक परिवर्तन के नाम से पुकार सकते हैं।

इस प्रकार ३२ अंश के तापक्रम पर यह बरफ़ का टुकड़ा पानी हो जाता है। यदि इस पानी को और अधिक गरम करते ही चले जायँ, तो, अधिक ताप-क्रम होने पर भी, जल के रूप में पहले कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता; परंतु जब जल का ताप-क्रम २१२° अंश हो जाता है, तब जल के गुण में फिर परिवर्तन हो जाता है, और वह वाष्प (भाप) बनकर आकाश में अदृश्य हो जाता है। भौतिक संसार में परिवर्तनवाद का यह एक अच्छा उदाहरण है। हम लोगों की चेतना में भी ऐसे ही परिवर्तनवाद का उदाहरण पाया जाता है। प्रारंभिक दशा में हम लोगों की चेतनता पाशविक रहती है, और तब एक ऐसी दशा आती है, जिसमें पाशविक चेतनता मनुष्योचित चेतनता का रूप धारण कर लेती है। इस दशा में मनुष्य एक विचारवान् जीव हो जाता है, और वह इस संसार की समस्या के बारे में सोचने-विचारने तथा अनुभव करने लगता है। यह परिवर्तन भी यदि बिलकुल नहीं, तो लगभग आकस्मिक तो अवश्य होता है। मनुष्योचित चेतनता में भी इसी प्रकार का एक परिवर्तन होता है, और मनुष्य तब रहस्यवादी हो जाता है। इस समय का अनुभव सर्वश्रेष्ठ, उच्च तथा पूर्ण होता है। इस दशा में मनुष्यों की साधारण अवस्था का अंत हो जाता है, और उसे सार्वभौमिक चेतनता का अनुभव होने लगता

है। इस समय पता चल जाता है कि यह जीव भी ईश्वर ही है। इस अनुभव की अवस्था में मनुष्य अपने को ईश्वर में लीन पाता है, और इस समय ज्ञाता और ज्ञेय में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता। हम लोगों के साधारण अनुभव से रहस्य-वादियों का अनुभव कहीं श्रेष्ठ और ऊँचा होता है। इस अनु-भव की दशा में मनुष्य चिल्ला उठता है—"अहं ब्रह्मास्मि।" इसी अनुभव की अवस्था में मनसूरअली 'अनलहक़' कहकर चिल्ला उठता था। इसी अनुभव के आवेश में महात्मा कबीर-दासजी कह उठे हैं—

"मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं ;
सब मेरा, मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं।"

इसीलिये संत पाल लिखता है—"If any man he in Christ, he is a new creature; the old things have passed away; behold, they are become new."

इसका अर्थ यह है कि यदि कोई मनुष्य ईसा में हो, तो वह बिलकुल एक नया जंतु हो जाता है। पुरानी बातें बीत जाती हैं, और मनुष्य बिलकुल नया हो जाता है।

हमें यह भी भली भाँति समझ लेना चाहिए कि रहस्य वादियों के अनुभव में जो यह अंतिम परिवर्तन होता है, वह उन सब परिवर्तनों से ऊँचा होता है, जिनका प्रायः सब लोग अपने जीवन-काल में अनुभव करते हैं। उस समय रहस्यवादी-उस अनुभव का आनंद लूटता है, जिसका पता उसे बहुत पहले से लग गया था। कहा जा चुका है कि, यह अनुभव आकस्मिक होता है; क्योंकि यह किसी साधारण वस्तु का अनु-भव नहीं; अंतिम सत्य अथवा परमेश्वर का होता है। यह

चेतनता का वह स्पष्ट परिवर्तन है, जिसमें सांत अनंत का अनुभव करता है जिसमें दृश्य अपना असली रूप धारण करता है, जिसमें असत्य के लिये कोई स्थान नहीं, सब सत्य-ही-सत्य दिखलाई पड़ता है, जिसमें कोई वस्तु सामयिक नहीं, सब शाश्वत अर्थात् नित्य का रूप धारण करती हैं।

❀ ❀ ❀

प्रारंभिक अवस्था में रहस्यवादियों के लिये एकांत तथा मौन रहने की भी आवश्यकता पड़ती है। रहस्यवादियों का अनुभव मनुष्य के मस्तिष्क की किसी विशेष दशा पर निर्भर है। हम लोगों की बुद्धि प्रायः सब वस्तुओं की विवेचना किया करती और प्रायः छोटी-छोटी वस्तुओं के बारे में अपनी शक्ति लगाया करती है। और हम लोगों की इच्छाएँ नीचे खींचनेवाले तथा क्षण-भंगुर सुखों के संतोषों में प्रायः लगी रहती हैं। जो मनुष्य रहस्यवादी होना चाहता है, उसे इन दोनों बातों को—कम-से-कम कुछ समय के लिये—अवश्य ही छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से मस्तिष्क उच्च भावों तथा विचारों के लिये ग्रहणशील रहता है। जब मनुष्य बुद्धि की विवेचना और इच्छा के क्षण-भंगुर सुखों का परित्याग करता है, तभी उसकी अंतरात्मा इस संसार के गहरे अर्थों को समझ सकती है, अन्यथा नहीं, और ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिये एकांत-वास की अत्यंत अधिक आवश्यकता है। इसीलिये प्रसिद्ध दार्शनिक जेम्स लिखता है—"रहस्यवाद एक विशेष मनुष्य का वह अनुभव है, जिसमें वह एकांत में अपने को उस ईश्वर में डूबा हुआ पाता है, जो इस संसार का एकमात्र कारण है।" इस एकांत-वास पर संसार के अधिक लोगों ने बहुत ही अधिक जोर दिया है। इस संबंध में पाश्चात्त्य देश

का एक प्रसिद्ध विद्वान् लिखता है—"निर्जन-स्थान तथा एकांत-वास ही प्रतिभा की माता है।"

संसार-भर में जितने सच्चे धर्म हो सकते हैं, रहस्यवाद ही उनका अंतिम सिद्धांत, अनुभव-गम्य पदार्थ है। इसी कारण रहस्यवादी के अनुभव के लिये एकांत-वास की जितनी आवश्यकता है, एक अच्छे धार्मिक के लिये भी इसकी उतनी ही आवश्यकता है। भारतवर्ष में तो इस एकांत-वास के अनेक प्रेमी पाए जाते हैं। इनके उदाहरणों से संस्कृत-साहित्य भरा पड़ा है। परंतु पाश्चात्त्य देशों में भी एकांत-वास के प्रेमी पाए जाते हैं। संत पाल, ईसा और फ़ाक्स आदि इसके उदाहरण हैं। इस संबंध में एफ़० जे० हेमर्टन लिखता है—"मैं विमलात्मता, शांति तथा अपने भावों और विचारों के समझने के लिये एकांत-वास को अमूल्य पदार्थ समझता हूँ। एकांत में ही हम लोग अपने स्वभावों तथा उसकी आवश्यकता को समझ सकते हैं।" मनोविज्ञान-शास्त्र की दृष्टि से भी एकांत-वास और मौन-व्रत अत्यंत ही लाभदायक हैं। जब हम लोग प्रतिदिन के कामों तथा बखेड़ों से निवृत्त हो जाते हैं, जब हम लोगों का मन शांत हो जाता है, तभी हम लोगों की अंतरात्मा सजग होती है, तभी आत्मिक जागृति के फ़ौवारे खुलते हैं, और तभी सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है। ऐसी दशा में ही पता चल सकता है कि हम लोगों का जीवन ईश्वरीय जीवन है। भारत के जंगलों में सबसे पहले आध्यात्मिक धर्म का प्रचार हुआ था। उपनिषदों का जन्म एकांत ही में हुआ था।

जब मनुष्य कुछ दिन तक एकांत-वास का सेवन करता है, तब वह अपने सच्चे धर्म का गंभीर अनुभव करने लग जाता है, तब वह प्रायः किसी धर्म की प्रथाओं से उदासीन हो जाता

है, और प्रायः साधारण धर्म की रीति तथा रवाज उसके मार्ग में कोई सहायता नहीं पहुँचाते, वरन् उसे हानिकारक अवश्य ही मालूम पड़ते हैं। जब वह मनुष्य सच्चे धर्म के अधिक तत्त्वों से अथवा किसी विशेष तत्त्व से अवगत हो जाता है, तब साधारण मनुष्यों की तरह नहीं रह जाता, और साधारण धर्मावलंबियों के बीच में अकेला ही रह जाता है। अंत में जब मनुष्य रहस्यवादी हो जाता है, तब वह प्रायः वर्तमान धार्मिक रीतियों की अवहेलना करने लगता है। कभी-कभी तो रहस्यवादी अपनी सत्यता के आधार पर सत्य के अनुभव के आगे धार्मिक बातों का कुछ भी महत्त्व नहीं समझता, और उनकी घोर निंदा करने लगता है। परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ऐसा समझते हुए भी—यह जानते हुए भी कि उसके अनुभव के आगे धर्मों की साधारण रीतियों की कोई सत्ता नहीं—वह धर्म की सब बातों का ऊपर से आदर करता है, और उनकी निंदा नहीं करता। परंतु ऐसी दशा में वह प्रायः अपने मन में ऐसा भी समझता है कि यह पद उसे धार्मिक नियमों के पालन करने से नहीं मिला है। पाश्चात्त्य देश में जॉर्ज फ़ॉक्स ऐसा ही उदाहरण है। जॉर्ज फ़ॉक्स रहस्यवादी था। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि रहस्य-वादी होने के लिये, ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये, धर्म की सब रीतियों को छोड़ना होगा, इन सब रवाजों को तोड़ना होगा, धार्मिक आवश्यकताओं को त्यागना पड़ेगा, और शांत चित्त से ईश्वर के दर्शन का इच्छुक बनना होगा। रहस्य-वादी ईश्वरीय पूर्णता का तात्कालिक अनुभव करना चाहता है। उस समय वह अपने और ईश्वर के बीच में ध्यान अथवा और कोई वस्तु नहीं आने दे सकता। इसलिये उसे एकांत-वास तथा मौन-व्रत की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये उसे

इन धार्मिक नियमों से भी स्वतंत्र रहने की आवश्यकता पड़ती है। यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार किया जाय, तो भी उसे किसी बाहरी विषयात्मक देवता की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। उसका धर्म तो केवल इतना ही रह जाता है—"शांत हो, और ईश्वर का अनुभव करो, और अंत में इस बात का भी अनुभव करो कि तुम भी ईश्वर हो।" रहस्यवाद तो वास्तव में एक की एक के पास उड़ान है।

इन सब बातों को पढ़कर कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या रहस्यवादियों के लिये एकांत-वास सर्वदा ही आवश्यक है ?

असल बात यह है कि रहस्यवादी की दो प्रधान अवस्थाएँ हो सकती हैं—साधक और सिद्ध।

जब तक कोई मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर लेता, परंतु उसके अनुभव करने का प्रयत्न करता रहता है, तब तक वह साधक कहलाता है, और जब वह ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता है, तब सिद्ध कहा जाता है। साधक की अवस्था में ही एकांत-वास की अधिक आवश्यकता होती है, सिद्ध की अवस्था में नहीं। जब रहस्यवादी सिद्ध हो जाता है, तब वह जन-समुदाय में भी स्वच्छंदता-पूर्वक रह सकता है।

रहस्यवादियों के विरुद्ध कुछ लोग यह भी प्रश्न कर सकते हैं कि जब रहस्यवादी को यह पता चलता है कि वह भी परमेश्वर ही है, तो संभव है, वह स्वयं अपना परमेश्वर भी बन बैठे !

यदि संसार के रहस्यवादियों का इतिहास देखा जाय, तो पता चलेगा कि रहस्यवादी लोगों के स्वभाव भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि रहस्यवादी स्वयं अपने को ईश्वर नहीं मानता, यद्यपि उस अनुभव की अवस्था

में वह अपने को ईश्वर से भिन्न नहीं समझता। वास्तव में रहस्यवादी ईश्वर का सच्चा भक्त ही बना रहता है, और बड़े प्रेम से वह ईश्वर की पूजा करता है। परंतु उस अनुभव के बाद वह संसार की सब वस्तुओं को दूसरी ही दृष्टि से देखता है। उस समय छोटी-से-छोटी वस्तु भी उसे अनंत दिखलाई पड़ती है, और सबसे खराब फूल पर भी वह आँसू बहा सकता है। उस अनुभव की दशा में वह उस सत्य का अनुभव करता है, जो संसार की सब घटनाओं को सत्य बनाता है। जिस अनंत, जिस ब्रह्म का वह अनुभव करता है, उसी को वह कण-कण में देखता है। रहस्यवादी तब सांत को नहीं, प्रत्युत अनंत को सिर झुकाता है। उस समय, उस अनुभव की दशा में, मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय में कुछ भी भेद नहीं रह जाता, और उसी दशा में रहस्यवादी ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ पूजा करता है।

❀ ❀ ❀

जो मनुष्य वास्तव में सच्चा रहस्यवादी हो जाता है, उसका ज्ञानोदय भी अवश्य होता है, और उसकी प्रतिभा अवश्य ही और भी अधिक चमक उठती है। उस अनुभव के बाद रहस्यवादी की प्रतिभा (Intuition) अथवा उसका सहज-ज्ञान अवश्य बड़ा प्रबल हो जाता है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि इस प्रतिभा में केवल विचार या ज्ञान का ही नहीं, अपितु भाव का भी अंश रहता है। इसमें संदेह नहीं कि वह प्रतिभा ज्ञानात्मक अवश्य होती है, किंतु उसमें भाव और अनुभव का भी अभाव नहीं रहता। रहस्यवादी के अनुभव की अवस्था में विचार और भाव, दोनो ह एक में मिले रहते हैं। कुछ लोगों ने तो ऐसा ही मान लिया है कि यह ज्ञान हम लोगों को भाव के द्वारा ही होता है। हम लोग ऐसा भी नहीं

कह सकते कि रहस्यवादियों का अनुभव विचार और भाव का संयोग-मात्र है। वास्तव में यह रहस्यवादियों की एक विचित्र अवस्था है, जिसमें उनकी चेतनता अत्यंत ही अधिक सजग हो जाती है, और वह भली भाँति इस बात को समझ लेती है कि वास्तव में सत्य क्या है और सत्य का क्या अर्थ है? रहस्यवादियों की यह अनुभव-पूर्ण, स्पष्ट, व्यवधान-रहित तथा ध्यान की सर्वश्रेष्ठ दशा है। इसमें वह एक का अनुभव करता है, और उस अनुभव की अवस्था में केवल उसके भावों की ही अधिकता नहीं होती, और न केवल आनंद का ही आधिक्य होता है। वास्तव में उस समय वह ईश्वर या सत्य का ठीक-ठीक अर्थ समझता, उसका स्पष्ट अनुभव करता, और उसका सच्चा ज्ञान प्राप्त करता है। जो सच्चा रहस्यवादी है, उसके लिये संसार के सब द्वंद्व-से मिट जाते हैं। सच्चा रहस्यवादी जड़ और चेतन, विचार और भाव, ज्ञाता और ज्ञेय, ईश्वर और जीव, नित्य और अनित्य आदि द्वंद्वों की सीमा के ऊपर चढ़ जाता है। वह एक ऐसी ऊँचाई पर पहुँच जाता है, जहाँ सब भेद-भाव मिट जाते हैं। वहाँ वह एकता-ही-एकता देखता है। इसीलिये प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स लिखता है—"रहस्यवादी अपने अनुभव के समय उन सब बातों का अनुभव करता है, जिन्हें साधारण लोगों की बुद्धि की सीमा के बाहर ही कहना अधिक उचित होगा। रहस्यवादी लोग सत्य का उसी प्रकार अनुभव करते हैं, जैसे हम लोग भौतिक दृश्यों का अनुभव प्राप्त करते हैं। उस समय रहस्यवादी के लिये निरपेक्ष्य और सापेक्ष्य का भी भेद-भाव मिट जाता है।"

जब रहस्यवादी इन सांसारिक द्वंद्वों के ऊपर उठ जाता है, जब वह परमोत्तम, इंद्रियातीत (Transcendent) दशा की

प्राप्ति कर लेता है, तब अपने अनुभव के द्वारा इस बात को भी जान लेता है कि उसकी सच्ची आत्मा ही निरपेक्ष्य (Absolute) की आत्मा है। इस अनुभव के बाद भी रहस्यवादी अपना परिमित तथा शांत अस्तित्व नहीं खोता। यही कारण है कि इस परमोत्तम दशा की प्राप्ति के बाद भी वह अपनी विशेषताओं को रखता है, और अपनी अप्रतिरूपता (Uniqueness) को नहीं खोता।

जब रहस्यवादी का अनुभव सर्वश्रेष्ठ तथा ऊँचा-से-ऊँचा हो जाता है, जब उसे परम पद की प्राप्ति हो जाती है, तब उसके ज्ञान की अत्यंत ही अधिक उन्नति हो जाती है। तब रहस्यवादी केवल इतना ही नहीं कहता कि मैं ईश्वर के समान हूँ, और न वह केवल इतना कहता है कि ईश्वर से मेरा संयोग हो गया है, किंतु वह यह भी कहने लगता है कि मैं और ईश्वर एक हूँ; दोनो में कोई अंतर नहीं।

इसको दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि रहस्यवादी केवल ईश्वर से समानता तथा सयोग का ही दावा नहीं करता, प्रत्युत ईश्वर से एकता, तादात्म्य और अनन्यता का भी दावा करता है। अपने अनुभव की उच्च दशा में रहस्यवादी वेदांती की तरह कह उठता है—"तत्त्वमसि" अर्थात् तू वह है।

इसका अभिप्राय यह है कि रहस्यवादी तब अपने को उस निरपेक्ष्य ब्रह्म का कोई अंश अथवा कोई दशा नहीं मानता, बल्कि कहता है—हम भी वही (ईश्वर ही) हैं। और आश्चर्य की बात तो यह है कि संसार-भर के रहस्यवादी ऐसा ही कह उठते हैं। ईसाई-धर्मावलंबी रहस्यवादियों ने भी यही कहा है, सूफ़ियों ने भी यही कहा है। यदि रहस्यवादियों का यह अनुभव एक वास्तविक घटना है, तो इन भिन्न-भिन्न धर्मों और

संप्रदायों के कथनों में समानता होना केवल स्वाभाविक ही नहीं, अपितु आवश्यक भी है।

हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि दर्शन की सहायता से भी हम लोग इसी सिद्धांत पर पहुँच सकते हैं। परंतु ऐसा करना केवल उस सच्चे अनुभव की प्रतिध्वनि-मात्र होगा। किसी एक बात का स्पष्ट रूप से अनुभव करना एक बात है, और उसी बात को कहना अथवा नाम-मात्र को समझना बिलकुल दूसरी बात। रहस्यवादी लोग अपने व्यक्तिगत, सच्चे अनुभव के आधार पर ही तत्त्वमसि कहते हैं, दर्शन की आवश्यकता के कारण से नहीं। टालर कहता है—"बस, एकताओं का अंत परमेश्वर है, और सब भेद एक में मिलकर एक हो जाते हैं।"

इसी संबंध में टॉम्स केंपिस कहता है—"निरपेक्ष्य एक है, और हम लोग निरपेक्ष्य (ब्रह्म) के साथ और उसी में हैं।"

रहस्यवादियों की दूसरी विशेषता का संबंध सर्वव्यापकता से है। बहुत लोगों का कथन है कि यही रहस्यवादियों का विरोधाभासात्मक प्रश्न है। कुछ लोग कहते हैं—मनुष्य की परिमित आत्मा उस अनंत तथा निरपेक्ष्य ब्रह्म का अनुभव कैसे कर सकती है? परिमित आत्मा स्पष्ट रूप से निरपेक्ष्य का अनुभव कर ही नहीं सकती। यह तो असंभव है। उन लोगों में से कुछ, जो रहस्यवादी नहीं हैं, इसे असंभव कहते हैं, कुछ लोग इसकी सत्ता ही में विश्वास नहीं करते, और कुछ लोग इसे परस्पर-विरोधी विषय समझते हैं। रहस्यवाद तो वास्तव में पूर्ण का तात्कालिक और स्पष्ट अनुभव है, और पूर्ण से हम लोगों का अभिप्राय निरपेक्ष्य आत्मा, ब्रह्म या Absolute self के पूर्ण तथा सुंदर अनुभव से है। संसार का कोई भी सच्चा

धर्म इस रहस्यवाद का खंडन नहीं कर सकता, और दर्शनों की दृष्टि से भी यह असंभव नहीं। यदि इस प्रश्न को तर्क की कसौटी पर कसें, तो भी यह असंभव नहीं ठहरता।

हम वंश-परंपरा के सिद्धांत को भली भाँति जानते हैं। इसके अनुसार हम लोग जाति के जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। इस अनुभव में जाति की प्रत्येक बातें नहीं आतीं; किंतु उनका सार अवश्य ही चला आता है। यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो स्पष्ट हो जायगा कि जाति का यह जीवन अनंत रूप अवश्य ही धारण करता है। तथापि हम लोग उसका अनुभव अवश्य करते हैं। इसी प्रकार हम लोग निर-पेक्ष्य का भी अनुभव कर सकते हैं, और उस अनुभव के बाद अपना व्यक्तित्व पृथक् रख सकते हैं, यद्यपि उस अनुभव की दशा में हम लोगों का व्यक्तित्व अवश्य ही नष्ट हो जाता है, और अपने को निरपेक्ष्य से भिन्न नहीं समझता।

कुछ लोग इस संबंध में निम्न-लिखित प्रश्न पूछ सकते हैं—जब हम लोग निरपेक्ष्य का अनुभव करते हैं, और यह मालूम है कि निरपेक्ष्य सर्वव्यापक है, तो क्या हम लोगों में भी सर्वव्यापकता के गुण आ जाते हैं? अर्थात् क्या रहस्यवादियों में भी कुछ निरपेक्ष्य के गुण आ जाते हैं?

इस संबंध में पाश्चात्त्य दार्शनिकों की यह राय है कि वास्तव में रहस्यवादियों में कई गुण अवश्य ही आ जाते हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध दार्शनिक टकवेल लिखता है—"By the great illumination which visits him, the mystic sees all things in the radiance of a new and transfiguring light."

इस अँगरेजी का भावार्थ यह है—अधिक बुद्धि-प्रकाश तथा

ज्ञानोदय के कारण रहस्यवादी संसार की सब वस्तुओं को एक दूसरी ही नवीन दृष्टि से देखता है, और इन सब वस्तुओं का उसे एक दूसरा ही रूप देख पड़ता है।

रहस्यवादी संसार की सब वस्तुओं को देश और काल में भिन्न-भिन्न नहीं देखता; किंतु इन सबों को अद्वैत दशा में ही, एक के रूप में ही, देखता है। रहस्यवादियों के भीतर एक ऐसा परिवर्तन हो जाता है, रहस्यवादियों की चेतना एक ऐसा रूप धारण कर लेती है, उनकी यह चैतन्य शक्ति इतनी प्रबल और ऊँची हो जाती है कि वे अपने को एक पृथक् व्यक्ति ही नहीं समझते, बल्कि अपने जीवन और निरपेक्ष्य सत्य के जीवन को एक समझने लगते हैं। इस प्रकार रहस्यवादी की परिमित आत्मा पूर्ण (ब्रह्म अथवा निरपेक्ष्य) का साक्षात्कार है, और उसका स्पष्ट अनुभव करती है। इस तरह स्पष्ट है कि रहस्यवाद कोई सिद्धांत नहीं, प्रत्युत यह एक दशा है, जिसका केवल रहस्यवादी ही अनुभव कर सकता अथवा समझ सकता है।

रहस्यवाद की सचाई संभाव्य तथा विश्लेषणात्मक सिद्धांतों पर निर्भर नहीं; अपितु यह एक ऐसा स्पष्ट, निर्मल तथा संदेह-रहित अनुभव है, जो रहस्यवादी के स्वभाव में ही पाया जाता है। रहस्यवादी अपनी प्रतिभा तथा सहज ज्ञान (Intuition) की सहायता से समझ लेता है कि उसमें और निरपेक्ष्य (ईश्वर) में समानता है, अनन्यता है, अभिन्नता है। इस प्रकार रहस्य-वादी इस बात का अनुभव करता है कि वास्तव में सर्वदा वही रहा है, जो होने के लिये वह इतना प्रयत्न करता चला आया। रहस्यवाद का यह भी एक विरोधाभास है कि रहस्यवादी सर्वदा उसी पदार्थ का सर्वथा अनुगमन तथा अनुसरण करता

रहता है, जिसे उसने पहले से ही प्राप्त कर लिया है, और वह वैसा होने का सर्वदा प्रयत्न करता रहता है, जैसा वह पहले ही से है। रहस्यवादी ईश्वरीय पूर्णता के आनंद को सर्वदा लूटता रहता है।

इसीलिये श्रीशंकराचार्यजी ने कहा है—"यदि हम कहें कि आत्मा ब्रह्म के पास जाती है, तो यह ठीक नहीं; क्योंकि इस कथन का यह अभिप्राय है कि आत्मा ब्रह्म हो जाती है, परंतु वास्तविक बात तो यह नहीं है। वास्तव में तो आत्मा ही ब्रह्म है, यद्यपि पहले वह इस बात का स्पष्ट रूप से अनुभव नहीं करती। आत्मा के विषय में आना-जाना तथा जानना भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जब एक दूसरे के पास जाता है, तो दोनो में कुछ-न-कुछ भेद अवश्य ही रहता है, और ऐसी दशा में ज्ञाता और ज्ञेय में भी कुछ-न-कुछ भेद अवश्य ही रहता है। परंतु वास्तव में ज्ञाता और ज्ञेय में, आत्मा और ब्रह्म में, कुछ भी भेद नहीं। ब्रह्म के विषय में 'पूजा' शब्द का भी प्रयोग तभी ठीक हो सकता है, जब पूज्य और पूजा करनेवाले में अंतर हो। परंतु सच्चे ज्ञान से यही पता चलता है कि 'आत्मा' 'ब्रह्म हो नहीं जाती, बल्कि आत्मा उसी समय ब्रह्म है, जब वह अपने असली रूप को पहचान लेती है, और जो वह सर्वदा ही रही है, अर्थात् आत्मा सर्वदा ब्रह्म ही रही है।"

रोम देश का प्रधान तथा प्रसिद्ध वेचक बोथियस भी श्रीशंकराचार्यजी के इस कथन का समर्थन करता है। सेंट पाल भी ऐसी कई बातें कहता है, जिनसे स्पष्ट मालूम होता है कि रहस्यवादियों के इस अनुभव में अनेक समानताएँ हैं, और वास्तव में ऐसा होना स्वाभाविक है भी। यदि सत्य कोई पदार्थ है, और यदि उसका अनुभव किया जा सकता है, तो यह सच्चा

अनुभव अवश्य ही कई अंशों में समान होगा, चाहे अनुभव करनेवाले पुरुष कैसे ही भिन्न-भिन्न विचार तथा स्वभाव के ही क्यों न हों।

जब मनुष्य रहस्यवादी हो जाता है, और जब उसे इस बात का पता चल जाता है कि वह परमेश्वर ही सर्वदा रहा है, है, और रहेगा, तो वह संसार के सब पदार्थों में, चाहे वे जड़ हों या चेतन, अपना ही अस्तित्व देखता है। उस दशा में वह अपनी गंभीर आत्मा को सर्वत्र देखता है, और यह सारा ब्रह्मांड उसका घर ही हो जाता है। फ्रैंसिस योरप का एक बहुत ही अधिक प्रसिद्ध रहस्यवादी हो गया है। इस अनुभव में फ्रैंसिस ने बहुत ही सुंदर रूप धारण कर लिया था।

जब फ्रैंसिस ब्रह्मानंद का अनुभव करता था, जब उसकी समाधि लगती थी, जब ईश्वर के साक्षात्कार के आनंद में उसका हृदय नाच उठता था, तब वह कविता करने लगता था, और उसी आवेश में वह सूर्य, वायु तथा अग्नि को अपना भाई कहकर संबोधन करता था और चंद्रमा, पानी तथा स्वयं मृत्यु को अपनी बहन कहता था। कभी-कभी संसार के सब पदार्थों में वह एकरूपता तथा अभिन्नता देखता था, और सब जीवधारियों से बड़े प्रेम से बातें करता था।

ट्रेइर्न भी पश्चिम का एक प्रसिद्ध रहस्यवादी है। वह प्रायः चिल्लाता उठता था—"जब सारा समुद्र तुम्हारी नसों में बहने लगेगा, जब स्वर्ग तुम्हें चारो ओर ढक लेगा, जब तारों को तुम राजमुकुट की तरह धारण करोगे, तभी और केवल तभी तुम इस ब्रह्मांड के सच्चे सुख का अनुभव करोगे, अन्यथा नहीं। जब तुम्हें पता चलेगा कि तुम इस सारे संसार के स्वामी हो, तब तुम्हें सच्चे सुख का अनुभव होगा। जिस तरह सूम सोने

को प्यार करते हैं, जिस तरह राजा लोग अपने छत्र-दंड को प्यार करते हैं, उसी तरह परमेश्वर को प्यार करो, उसके आनंद में गीत गाओ, तब तुम्हें सच्चे सुख का सच्चा अनुभव होगा।"

रिचर्ड जोफ़री "The story of my heart" और "Nature and Eternity" में लगभग ऐसी ही बातों का उल्लेख करता है। रिचर्ड जोफ़री ने अपने एक लेख में लिखा है—"Let me Joy with all living creatures, let me suffer with them all, the reward of feeling a deeper, grander life would be amply sufficient."

इन वाक्यों में वह अपनी एक रूपता तथा अभिन्नता संसार के सब प्राणियों से स्थापित करता है। रहस्यवादी की सर्वज्ञता की घोषणा उपनिषदों में कई स्थानों पर और बार-बार डंके की चोट की गई है। उपनिषद् तो ऐसी घोषणाओं से भरे पड़े हैं। बार-बार उपनिषदों में लिखा है—"तत्त्वमसि"।

इस छोटे वाक्य में आत्मा और ब्रह्म की समानता, एक-रूपता तथा अभिन्नता बड़े जोरों से एवं संदेह-रहित होकर कही गई है। इसका अभिप्राय यही है—तेरी आत्मा ब्रह्म है।

योरप के कुछ प्रसिद्ध विद्वानों तथा रहस्यवादियों ने कहा है—प्रेम ही परमेश्वर है। रहस्यवादी के लिये तो यह एक स्वतःसिद्ध वस्तु है। रहस्यवादी प्रकट रूप से इस बात का अनुभव करता है कि प्रेम ही परमेश्वर है। रहस्यवादी के हृदय से प्रेम चारो ओर उमड़ पड़ता है, और यही बात रहस्यवादी के लिये इस बात का प्रमाण है कि प्रेम ही परमेश्वर है; क्योंकि प्रेम वास्तव में एक ईश्वरीय सिद्धांत है। यदि सच पूछो, तो हृदय के लिये प्रेम वही है, जो बुद्धि के लिये विचार (Rea-

son)। प्रेम और विचार, दोनो सांसारिक द्वंद्वों के ऊपर उठने का प्रयत्न करते हैं। इसलिये सच्चे रहस्यवादी के लिये 'यह विश्व सज्ञान तथा सविवेक है' का अर्थ वही है, जो 'प्रेम ही परमेश्वर है' का है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो गई कि रहस्यवादी का यह अंतर्भाव, उसकी विश्व के साथ अभिन्नता, रहस्यवाद की एक प्रधान आवश्यकता है। इससे यह बात प्रकट हो जाती है कि बुराई कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं, बल्कि एक सापेक्ष्य वस्तु है। रहस्यवादी परमेश्वर की पूर्णता का स्पष्ट तथा प्रकट रूप से अनुभव करता है। वह जानता है कि परमेश्वर सर्वज्ञ तथा एक है, वह प्रेममय है और प्रेम ही है। इसलिये परमेश्वर एक कर्मशील नियम तथा भेद-भाव के अस्तित्व को मिटा देनेवाला सिद्धांत है। रहस्यवादी भली भाँति जानता है कि परमेश्वर एक ऐसा सिद्धांत है, जो सब पदार्थों को अपने में शामिल रखता है, और जिसका अस्तित्व स्वतंत्र है। रहस्यवादी भली भाँति जानता है कि परमेश्वर सच्चिदानंद है, और वह यह भी जानता है कि संसार का कोई पदार्थ सच्चिदानंद के मार्ग में कंटक का काम नहीं कर सकता।

इसीलिये रहस्यवादी सर्वशुभवादी (Optimist) हो जाता है; क्योंकि वह यह भी जानता है कि परमेश्वर आनंद-स्वरूप है, दुःख-रूप नहीं। यदि वास्तव में प्रेम ही परमेश्वर है, और परमेश्वर ही इस संसार में सब कुछ है, तो शाश्वत बुराई का कोई अभिप्राय ही नहीं हो सकता, यह तो असंभव है। इसलिये बहुत-से रहस्यवादी मृत्यु को भी दुःखात्मक स्वीकार नहीं करते, और इस रूप में मृत्यु की सत्ता ही स्वीकार नहीं करते। इसीलिये पाश्चात्त्य देश का प्रधान कवि टेनिसन कहता है—

"Death is a laughable impossibility."

अर्थात् मृत्यु एक हास्यास्पद असंभव बात है।

इन सब कथनों से स्पष्ट है कि पाश्चात्त्य देश के अधिक रहस्यवादी लोग दुःख के स्वतंत्र अस्तित्व में भी विश्वास नहीं करते, और दुःख को एक नित्य पदार्थ नहीं मानते।

यदि इस प्रश्न पर शास्त्रों की दृष्टि से विचार किया जाय, तो उक्त सिद्धांतों की सत्यता और भी प्रकाशित हो जाती है।

महर्षि कपिल ने अपनी 'सांख्य सूत्र-वृत्ति' में पहले ही यह सूत्र लिखा है—

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ १ ॥"

भावार्थ—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनो दुःखों से अत्यंत निवृत्ति ही परम पुरुषार्थ है।

इस सूत्र से स्पष्ट है कि महर्षि कपिलजी दुःखों के हटाने का ही प्रयत्न करते हैं, सुखों के हटाने का नहीं। इससे यह अनुमान निकलता है कि इस ब्रह्मांड में दुःखों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, और ये हटाए जा सकते हैं। सुख ही स्वाभाविक है, और यह इस संसार से हटाया नहीं जा सकता। पंतजलि ऋषि ने भी दुःखों की ही निवृत्ति लिखी है। इससे यह अनुमान निकलता है कि वह भी दुःखों की स्वतंत्र सत्ता नहीं स्वीकार करते थे, जैसा कि उनके निम्न-लिखित सूत्र से प्रकट ही है—

"ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः।" कैवल्यपाद ॥ २६ ॥

रहस्यवादियों का एक प्रधान गुण उनकी कर्मशीलता है। इसी कर्मशीलता के कारण रहस्यवादी भिन्न-भिन्न विषयों की सृष्टि करता है। पूर्ण अनुभव की भी कर्मशीलता तथा उत्पादन करना उसका प्रधान गुण है। रहस्यवादियों के लिये निरपेक्ष्य

आत्मा कोई सूक्ष्म भाव-निष्कर्ष (Abstraction) नहीं रह जाती ; रह जाती है एक मूर्तिमान्, स्वयं प्रकाशित होनेवाली और उत्पन्न करनेवाली शक्ति। रहस्यवादी जब इस पूर्ण का अनुभव करता है, तब उसमें भी निरपेक्ष्य सत्य ईश्वर अथवा ब्रह्म की इस उत्पादक शक्ति में भाग लेता है, और स्वयं कर्म-शील तथा उत्पादक हो जाता है। जब मनुष्यों की परिमित आत्मा पूर्ण का प्रत्यक्ष, स्पष्ट तथा तात्कालिक अनुभव करती है, तब उसे विश्वास हो जाता है कि वह उस पूर्ण के प्रकाशित करने का साधन है। इसी विचार से रहस्यवादी उस ईश्वर का प्रचार करने लगता है, जिसका वह अनुभव करता और जिसके दर्शनों का वह आनंद लूटता है। चाहे रहस्यवादी कितना ही एकांत-प्रेमी, उदासीन तथा निष्क्रिय क्यों न हो, अंत में क्रिया-शील अवश्य ही हो जाता है। और, जब अनुभव गहरा होता है, तब मनुष्य अपने अनुभव को दूसरों पर प्रकाशित करने के लिये लालायित हो जाता है। परंतु रहस्यवादी पूर्ण के निर्माण का प्रयत्न नहीं, प्रत्युत उसे प्रकाशित और प्रकट करने का प्रयत्न करता है।

साधारण लोग अपने धर्म में एक परिमित परमेश्वर को मान लेते और उसकी पूजा करते हैं। कृत्य-साधकतावाद (Pragmatism) में भी एक परिमित ही परमेश्वर माना जाता है। इन सिद्धांतों के अनुसार हम लोग उस परिमित ईश्वर की सहायता से इस संसार के पूर्ण करने का प्रयत्न और इस संसार की बुराइयों के हटाने की चेष्टा करते हैं। परंतु इसका क्या प्रमाण है कि हम लोगों को अंत में अवश्य ही सफलता होगी? लेकिन रहस्यवादियों का विचार इसके विरुद्ध है। ये लोग संसार को ऐसी बिगड़ी दशा में नहीं पाते, जिसे

ठीक करने तथा उचित दशा में लाने की आवश्यकता हो।
इनका कथन है कि इस संसार में बुराई तथा गलतियों का चाहे जो रहस्य हो, परंतु इनसे हम लोग उद्विग्न नहीं हो सकते।

इस प्रकार बुराई की निरपेक्षता का नाश हो जाता है, और बुराई केवल एक सापेक्ष्य वस्तु रह जाती है। बुराई भी एक प्रकार से उस सुंदर, संगीतमय ब्रह्म के अनुभव का एक साधन-मात्र रह जाती है। उस दशा में रहस्यवादियों की सब शंकाएँ नष्ट हो जाती हैं, उन्हें किसी का डर नहीं लगता और विश्वास तथा आशा से उनका हृदय ओत-प्रोत रहता है। तब रहस्य-वादी को पता चलता है कि वह एक परिमित परमेश्वर को सहायता देने तथा इस अस्त-व्यस्त एवं अपूर्ण संसार को सुदृढ़ और पूर्ण बनाने के लिये नहीं है, बल्कि उसका प्रधान कार्य अपने देश और काल ही में उस पूर्ण को प्रकाशित करना है, जिसके अनुभव का वह प्राय: सुख लूटता है, और जो शाश्वत सत्य है। इसीलिये जर्मन देश का एक प्रसिद्ध विद्वान् कहता है—रहस्यवादी अपने को पूर्ण के प्रकाशित करने का साधन-मात्र समझता है। यही कारण है कि उस पर सुख और दु:ख का, पाप और पुण्य का, मीठेपन और तीखेपन का उतना प्रभाव नहीं पड़ता। सच्चे रहस्यवादी की कल्पनाएँ और उसके अज्ञान भी बुद्धि, ज्ञान तथा विद्या का रूप धारण कर लेते हैं।

रहस्यवादी लोग जिस सत्य का अनुभव करते हैं, उसका प्रकाश, उसकी ज्योति सर्वत्र ही समान है। लॉरेंस अपने मठ में भोजन बनाया करता था, और उस दशा में भी वह सत्य का अनुभव करता था। इसी का वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविता में और इटली के सर्वश्रेष्ठ कवि दांते ने अपने Divine Commedia नामक ग्रंथ में वर्णन किया है।

रहस्यवादियों का अनुभव जितना ही गहरा तथा जितना ही सच्चा होगा, उतना ही वे स्वतंत्र होने का प्रयत्न करेंगे। लड़कपन में मनुष्य केवल आज्ञाओं का पालन करता है, और युवावस्था में आज्ञाओं के पालन के अतिरिक्त अपने पृथक् अस्तित्व का भी अनुभव करता है। तब उसकी एक ऐसी दशा भी आती है, जब वह अपने व्यक्तित्व का तीव्र अनुभव करने लगता है। जब मनुष्य अपनी आत्मा तथा उसकी एकता का स्पष्ट रूप से अनुभव करने लगता है, तब एक प्रकार से उसकी चेतनता के इतिहास में एक बड़ा भारी परिवर्तन होता है। इसके बिना कोई मनुष्य रहस्यवादी नहीं हो सकता। रहस्यवाद का यह एक सोपान है, जिस पर से प्रत्येक रहस्यवादी को अवश्य ही जाना पड़ता है। जब मनुष्य अपने जीवन में अपनी आत्मा का प्रकट रूप से अनुभव करने लगता है, तब उसके जीवन का सदाचार भी बदल जाता है, और वह ऊपरी बातों की उतनी चिंता नहीं करता। अब वह अपनी आत्मा की ही अधिक चिंता करता और अपनी आत्मा के साथ सत्यता का बर्ताव करता है। प्रोफ़ेसर स्टारबुक कहता है—ऐसी दशा में तुम स्वयं सच्चे रहो और अपनी आत्मा के साथ सत्य व्यवहार करो।

इस प्रकार जीवन व्यतीत करने के बाद मनुष्य के जीवन में दूसरा परिवर्तन आता है, और उसे इस बात का भी अनुभव होने लगता है कि वह केवल परिमित ही नहीं, अनंत भी है। धीरे-धीरे मनुष्य को इस बात का भी अनुभव होने लगता है कि उसकी आत्मा निरपेक्ष्य अर्थात् पूर्ण जीवन या ब्रह्म ही है। तब मनुष्य अपनी आत्मा का भी अस्तित्व खो बैठता है, और उस अनंत ब्रह्म में लीन हो जाता है, जिसका वास्तव में वह

अनुभव करता है। इस प्रकार वह मनुष्य ब्रह्म के प्रकाशित करने का एक प्रधान साधन हो जाता है। इसीलिये रहस्य-वादियों का जीवन स्वतंत्र हो जाता है। इसी ख़याल से टकवेल साहब ने अपने ग्रंथ में लिखा है—"And so if thought, as we have maintained, has on its part imperial rights of its own, if to be valid, it must be free; so it is also with the divine experience of genuine mysticism."

ऊपर अँगरेजी के अंश में लेखक ने रहस्यवादियों की स्वतंत्रता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। सच्चा रहस्यवादी बाहरी आज्ञाओं की अवश्य ही अवहेलना करता है। इसीलिये पाश्चात्त्य देश का एक प्रसिद्ध विद्वान् लिखता है—"It is essential to its fundamental nature, that it (mystic) escapes the limitations of out-ward authority."

यह बात रहस्यवाद के सिद्धांत के अनुकूल ही है कि रहस्यवादी लोग बाहरी आज्ञाओं की अवहेलना करते हैं। रहस्यवादियों का अनुभव मौलिक होता है, किसी की नक़ल नहीं। किसी चीज़ के बीच में आने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, यह अनुभव स्वयं स्पष्ट तथा व्यवधान-रहित होता है। दूसरा व्यक्ति—चाहे वह ऐतिहासिक हो अथवा काल्पनिक, जीता हो या मरा – रहस्य-वादी के अनुभव तथा आदर्श की पूर्ति कर हो नहीं सकता। रहस्यवादी जिसका प्रत्यक्ष अनुभव करता है, उसके स्थान पर किसी अन्य पदार्थ की कल्पना नहीं कर सकता—कोई दूसरा पदार्थ वैसा हो ही नहीं सकता। यदि रहस्यवादी अपने उस अनुभव के पदार्थ के स्थान पर किसी दूसरी वस्तु को मानता

है, तो वह अवश्य ही एक बड़ी भारी ग़लती करता है, और इससे वह अपने अनुभव की एकता, ईश्वरीय चेतनता की मौलिकता तथा अपनी स्वतंत्रता को दूषित करता, उनका निरादर करता और अपने लिये बेड़ियाँ तैयार करता है। इसीलिये लोग कहते हैं कि सब बेड़ियाँ बुरी हैं, चाहे वे सोने की ही क्यों न हों।

यदि बाहरी आज्ञाओं को मानना पड़े, यदि ऊपरी बातों के अनुसार काम करना पड़े, तो मन तथा हृदय में कुछ-न-कुछ संदेह, कुछ-न-कुछ डर और कुछ-न कुछ शंका अवश्य ही रहेगी। ऐसी दशा में मनुष्य केवल आनंद और प्रेम के वश होकर काम न करेंगे। इसीलिये बहुत लोगों का विचार है कि रहस्यवादी जितना ही सच्चा होगा, उसका रहस्यवाद उतना ही ऊँचा होगा, रहस्यवादी उतना ही स्वतंत्र होगा। इसी संबंध में एक पाश्चात्त्य विद्वान् कहता है—"And so genuine mysticism, mysticism at its highest and best, must be free." अर्थात् रहस्यवादी जितना ही ऊँचा तथा श्रेष्ठ होगा, उतना ही अधिक स्वतंत्र होगा। सच्चा रहस्यवादी कभी-कभी अपनी स्वतंत्रता तथा मौलिकता के बारे में बहुत जोर से कहने तथा लोगों पर प्रभाव डालने लगता है। कभी-कभी तो रहस्यवादी जान-बूझकर किसी बंधन को स्वीकार कर लेता है; क्योंकि वह जानता है कि लोगों का इसी में कल्याण है, और यही परमेश्वर की इच्छा है। उस बंधन के स्वीकार करने में रहस्यवादी अपने मन में यह भली भाँति जानता है कि इसके स्वीकार करने से उसकी आत्मा को किसी प्रकार का लाभ न होगा। सच्चे रहस्यवादी दो दशाओं में पाए जाते हैं। पहली दशा में उन रहस्यवादियों की गणना की जा सकती है, जो

किसी विशेष धर्म में उत्पन्न होते हैं, और रहस्यवादी हो जाने पर भी उसी धर्म के अनुकूल कार्य करते हैं। दूसरी दशा में उन रहस्यवादियों की गणना हो सकती है, जो किसी विशेष धर्म में उत्पन्न तो होते हैं, परंतु रहस्यवादी हो जाने के बाद या तो उस धर्म को त्याग देते या उसकी निंदा करने लगते हैं। रहस्यवाद की दृष्टि से दोनो प्रकार के लोग श्रेष्ठ रहस्यवादी कहे जा सकते हैं; परंतु और दृष्टिकोणों से विचार करने से दोनो में अंतर है। अन्य दृष्टिकोणों से दूसरे स्थान पर मैं विचार करूँगा। जब हम लोग कहते हैं कि रहस्यवादी स्वतंत्र होता है और किसी बंधन में नहीं पड़ना चाहता अथवा जान-बूझकर एक बंधन को स्वीकार करता है, तो हमारा अभिप्राय यह नहीं कि रहस्यवादी चंचल, स्वच्छंद तथा उद्दाम होता है। रहस्य-वादियों के परमानंद के जो भाव हैं, उनका भी कोई अर्थ है, उनका भी कुछ अभिप्राय होता है। उस परमानंद का भी विषय होता है, उसका अंत गतार्थ होता है, और उसकी सत्यता की जाँच की कुछ कसौटियाँ भी हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि ये कसौटियाँ किसी विशेष धर्म के आधार पर ही बनाई जा सकती हैं। इन कसौटियों के आधार परंपरागत कथा, संप्र-दाय, कोई बाहरी तथा धार्मिक आज्ञा आदि नहीं हो सकते। इसकी कसौटी सब सत्य कलाओं की कसौटी है, सारे सत्य जीवन की कसौटी है। यह अध्यात्म-विद्या का एक बहुत ही श्रेष्ठ तथा सुंदर सिद्धांत है कि हम लोगों का जीवन जितना ही सहेतुक होगा, सज्ञान होगा, सविवेक होगा और बौद्धिक होगा, उतना ही अधिक सत्य होगा; और यह जीवन जितना ही अधिक सत्य होगा, उतना ही अधिक सज्ञान, सहेतुक, सविवेक और बौद्धिक होगा। इसीलिये एक प्रसिद्ध दार्शनिक ने कहा है—

"The most exat definition of the Absolute or Perfect Experience would be that it is a sublime passion supremely rational."

इसका भावार्थ यह है कि निरपेक्ष्य अथवा पूर्ण अनुभव की सबसे अधिक ठीक परिभाषा यह है—यह वह उन्नत तथा उदात्त राग या भाव है, जो अत्यंत ही अधिक बौद्धिक तथा सज्ञान है।

इस संबंध में प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि वर्ड सवर्थ कहता है—
"Passion which is highest reason in a soul sublime"

इसका भी लगभग वही अर्थ है। वर्ड्सवर्थ कहता है—राग (भाव) ही उन्नत आत्मा में सर्वश्रेष्ठ बुद्धि और सर्वश्रेष्ठ विवेक है।

रहस्यवादी इसी अत्यंत अधिक बौद्धिक तथा रागात्मक निरपेक्ष्य का स्पष्ट रूप से अनुभव करने के लिये प्रयत्न करता है। इसलिये जो कसौटी रहस्यवादियों की जाँच के लिये तैयार की जायगी, वह भीतरी होगी, मूर्तिमती होगी, सत्य-जन्म-संबंधी होगी, आनुमानिक न होगी, व्याख्यानात्मक न होगी, और न नैयायिकों का साधारण न्याय होगी। बहुत लोग सोचते हैं, साधारण न्याय के अतिरिक्त और कोई न्याय हो ही नहीं सकता। इसी बात के स्वीकार करने से कृत्य-साधकतावाद (Pragmatism) के माननेवाले भारी भ्रम में पड़ जाते हैं।

जब हम लोग इस बात को स्वीकार करते हैं कि रहस्यवादियों में भाव और बुद्धि, दोनो का पूर्ण रूप से अस्तित्व पाया जाता है, और इसके साथ यह भी स्वीकार करते हैं कि हम लोगों की आत्मा ही निरपेक्ष्य है, तो यह मानना ही पड़ेगा

कि रहस्यवादी अवश्य ही अपनी भीतरी स्वतंत्रता की इच्छा प्रकट करेगा ; क्योंकि यही उसका वास्तविक स्वभाव है। बहुत लोग यह समझते हैं कि रहस्यवादियों में भाव-ही-भाव होते हैं, उनका विचार मंद पड़ जाता है, और उनकी क्रियाशीलता भी मंद पड़ जाती है। परंतु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। रहस्यवादी की चेतना के सब अंग अत्यंत प्रबल रहते हैं। रहस्यवादी के अनुभव की दशा में उसके विचार (Thought) और भाव (Feeling) एक में मिले रहते हैं। भाव तो प्रायः भ्रम में ही पड़ जाया करता है। रहस्यवादी के विचार इन भावों को उचित मार्ग पर लाने का सर्वदा प्रयत्न करते रहते हैं। यदि बुद्धि तथा विचार न हो, तो मनुष्यों के भाव उसे कभी-कभी बहुत ही नीचे की ओर खींचने लगते हैं। इसलिये अध्यात्म-विद्या में भी बुद्धि तथा विचार के महत्त्व एवं अस्तित्व को मानना ही पड़ता है। पाश्चात्त्य देशों में ऐसे भी रहस्यवादी पाए जाते हैं, जो केवल भाव (Emotion) को ही प्रधानता देते और बुद्धि तथा विचार (Intellect) की अवहेलना करते हैं। परंतु वहाँ पर अत्यंत ही अधिक विचारवान् रहस्य-वादी भी पाए जाते हैं। पाश्चात्त्य देशों में कुछ लोग उन्हीं मनुष्यों को सच्चा तथा श्रेष्ठ रहस्यवादी समझते हैं, जिनमें विचार की मात्रा भी अधिक पाई जाती है। जिस प्रकार कोई धर्म विचार (Reason) की अवहेलना नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोई रहस्यवादी भी विचार की निंदा नहीं कर सकता।

रहस्यवाद या छायावाद

हिंदी-साहित्य-संसार में कुछ दिनों से रहस्यवाद अथवा छायावाद की ख़ूब चर्चा चल रही है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से स्व० पंडित पद्मसिंहजी शर्मा ने हिंदी के आधुनिक छायावादी कवियों की कड़ी आलोचना करके—उन्हें अपने बुज़ुर्गों का अदब सीखने की राय देकर—छायावादियों के समूह में बड़ी खलबली मचा दी थी, जिसका अभी तक अंत नहीं हो पाया। दरअसल पंडितजी ने अपने भाषण द्वारा एक ऐसे युद्ध का श्रीगणेश किया था, जो अभी बहुत दिनों तक जारी रहेगा, और हिंदी-भाषा के कवि-समाज को दो भागों में विभक्त करता रहेगा। पंडितजी के भाषण से उन्हें रंज भले ही हुआ हो, उनके दिल पर इसकी चोट भले ही लगी हो, पर छायावाद या रहस्यवाद का अर्थ वह स्वयं समझते हैं या नहीं, इसमें संदेह ही है। हाँ, कुछ ऐसे छायावादी कवि अवश्य हैं, जो सच्चे कवि हैं, और जिनकी कविताओं में छायावाद या रहस्यवाद के सभी चिह्न मौजूद हैं, जो स्वयं अपनी कविता को समझते हैं, और भावावेश में आकर ही जिन्होंने अपने काव्य की सृष्टि की है। हमारे कहने का तात्पर्य पं० सुमित्रानंदनजी पंत-जैसे कवियों से है। 'मौन निमंत्रण'-जैसी कविताओं को पढ़कर कौन न मुग्ध हो जायगा ?—

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,

विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न-जाने सौरभ के मिस कौन
सँदेसा मुझे भेजता मौन !

आदि पंक्तियों में सच्चा काव्य निहित है। पर हिंदी की अधिकांश कविताएँ, जो आज दिन छायावाद के नाम पर लिखी जा रही हैं, ऐसी हैं, और अपने इस कथन के लिये हम सांजलि क्षमा प्रार्थी हैं, जिनका छायावाद अथवा रहस्यवाद से कोई संबंध नहीं*। छायावादी होना बड़ा कठिन है—और बड़ा सुगम भी। अगर किसी ने भावना (reverie) अथवा

* पर वर्तमान छायावादी कवियों में ऐसे बहुत कम हैं, जो यह मानने को तैयार हैं। उन्हें लॉर्ड मॉर्ले की इन पंक्तियों पर ध्यान-पूर्वक विचार करना चाहिए—

It is of no avail for any writer to contend that he is not obscure. If the world, with every reason for the most benevolent will possible, and sincerest effort, still finds him obscure, then for his audience obscure he stands. If the charge is largely made, is not the Verdict already as good as found ? If the gathering in a great hall make sings that they can not hear me, it is idle for me to persist that my voice is perfectly audible-

संसार में गुण का अनादर बहुत कम होता है। यदि छायावाद की उत्तम-सार-युक्त-कविताओं की सृष्टि हो, तो हिंदी-साहित्य-संसार उन्हें अवश्य ही अपनावेगा और दाद देगा—

"कमी नहीं क़द्रदाँ की अकबर ,
करे तो कोई कमाल पैदा।"

भावावेश में आकर उस ब्रह्म को, जो अनादि और अनंत है, और संसार की अनेकता के अंदर छिपी हुई एकता (Unity) को देख लिया है, वह सच्चा रहस्यवादी है, उसके लिये रहस्य-वाद बड़ा सुगम है। पर जिसने इनका अनुभव नहीं किया, वह लाख कोशिश करने पर भी छायावादी अथवा रहस्यवादी नहीं हो सकता। उससे छायावाद कोसों दूर है। संसार के बड़े-बड़े दार्शनिक चिंतकों में बहुतेरे ऐसे हो गए हैं, जिनका रहस्यवाद ही, जिसे अँगरेज़ी में Mysticism कहते हैं, मुख्य लक्ष्य था। प्लेटो, प्लोटिनस, एखार्ट, ब्रुनो, स्पिनोज़ा, गेटे, हेज़ल आदि सभी रहस्यवादी थे, और रहस्यवाद उनके जीवन का आधार था।

रहस्यवाद नाम का कोई ख़ास मत है, यह कहना ग़लत है। इसकी कोई ख़ास फ़िलॉसफ़ी नहीं है, जिसने संसार के एकत्व का, एक ब्रह्म का, देवत्व का अनुभव कर लिया है, वह रहस्य-वादी है, चाहे उसने जिस रूप से इसका अनुभव किया हो, वह चाहे जिस पथ से वहाँ तक पहुँचा हो। उदाहरण के लिये अँगरेज़ों के दो प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ और ब्लेक को लीजिए। वर्ड्सवर्थ ने देवता का अनुभव प्रकृति (Nature) के द्वारा किया था। पर ब्लेक के लिये प्रकृति इस कार्य में बड़ी भारी रुकावट थी। उसके लिये मनःकल्पना (Imagination) ही सर्वोत्तम साधन था। पर चाहे पथ अनेक हों, साधन भिन्न हों, इसमें सब सहमत हैं कि संसार की जितनी भिन्न वस्तुएँ हैं, उनके अंदर छिपी हुई अभिन्नता है, सारी चीज़ों, सारे जीवन, के अंदर एक ही जीवन है, और सबमें एक छिपा हुआ सादृश्य। संसार की विभिन्न वस्तुओं के भीतर जो अविभिन्नता है, उसका हम पृथक्करण नहीं कर सकते। छायावाद अथवा रहस्य-

वाद का यह मूल मंत्र है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने भी कहा है—

"सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ;
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।"

अर्थात् जिस ज्ञान से यह मालूम होता है कि भिन्न-भिन्न सभी प्राणियों में एक ही अविभक्त, अव्यय भाव अथवा तत्त्व है—जिससे विभक्त में अविभक्त और अनेकता में एकता का अनुभव होता है—वही सात्त्विक—सच्चा—ज्ञान है।

छायावादियों के अनुसार यदि संसार में एक ही जीवन है, जिसे अद्वैतवादी ब्रह्म के नाम से पुकारते हैं, और 'अनेकता' के अंदर छिपी हुई एकता है, तो संसार के और जितने चर और अचर प्राणी हैं, वे उसके ही भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप अथवा प्रतिबिंब हैं। वह स्वयं तो अविनाशी है, पर उसके रूप विनश्वर हैं। फिर यदि चराचर प्राणियों के—अनेकता के—अंदर छिपी हुई एकता है, तो मनुष्य का स्वभाव बहुत कुछ ईश्वर का-सा होना चाहिए, क्योंकि उसमें ईश्वर का अंश मौजूद है। अतएव यदि मनुष्य चाहे, तो वह अपनी प्रकृति के देव-तुल्य अंश—आत्मा अथवा चित्त—के द्वारा ईश्वर को जान सकता है। रहस्यवादियों का यह विश्वास है कि मनुष्य को जिस प्रकार भौतिक विषयों के समझने के लिये बुद्धि का दान मिला है, उसी प्रकार आध्यात्मिक विषयों के समझने के लिये आत्मा की सृष्टि हुई है। अतः आध्यात्मिक विषयों में बुद्धि का प्रयोग करना व्यर्थ ही नहीं, भारी मूर्खता है। भौतिक विषयों में मनुष्य तर्क-शक्ति का प्रयोग कर सकता है, पर आध्यात्मिक विषयों को वह स्वयं वैसा होकर ही जान सकता है, दूसरी तरह नहीं। यदि हम प्रेम को जानना चाहते हैं, तो हमें स्वयं प्रेम में

पड़ना होगा। यदि हम संगीत को समझना चाहते हैं, तो हमें स्वयं गायक बनना पड़ेगा। और, यदि हम यह जानना चाहते हैं कि ईश्वर क्या है, तो ईश्वर-सा ही बनना पड़ेगा। पोरफ़िरी के शब्दों में समान ही समान को जान सकता है, दूसरा नहीं। अतएव छायावादी अथवा रहस्यवादी ब्रह्म—ईश्वर— में मिलने के लिये वह सदैव प्रयत्न करता है कि वह स्वयं ईश्वर—ब्रह्म—समान हो जाय।

कुछ रहस्यवादियों ने, जिनमें प्लेटो का नाम विशेष कर उल्लेखनीय है, ज्ञान को स्मृति बतलाया है। अभिप्राय यह कि आत्मा को वे अविनाशी समझते हैं, जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने भी कहा है—

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाय भूत्वा भविता वा न भूयः;
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।"

कविवर वर्ड्सवर्थ ने अपने प्रसिद्ध 'Ode on the Intimations of Immortality' में इसी मत का प्रतिपादन किया है।

छायावाद के जिन सिद्धांतों की चर्चा ऊपर की गई है, उन्हें कोई भी सच्चा रहस्यवादी (अथवा छायावादी) तर्क अथवा विवेक-शक्ति से प्रमाणित करना नहीं चाहता, और न इन साधनों के द्वारा उसे इनकी प्राप्ति हा हुई है। वह इन्हें इसलिये मानता है कि उसने इनका अनुभव किया और देखा है, अतएव इनकी सत्यता पर उसे पूरा विश्वास है। दूसरे जो रहस्यवादी नहीं हैं, और जिन्हें इनका कुछ भी अनुभव नहीं, वे इस पर विश्वास नहीं कर सकते। थोड़ी देर के लिये हम यह मान लें कि एक ऐसा देश है, जहाँ सभी अंधे हैं, अब अगर अचानक उस देश के किसी एक आदमी को नेत्र मिल जायँ, और वह देखने लगे, तो वह सूर्य की आभा को देखकर अवश्य ही चकित होगा,

तथा औरों के सामने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा। पर उसके लाख कहने पर भी क्या कोई उसकी बात को मान सकता है ? ठीक वही दशा संसार के इतर जनों के सम्मुख उस रहस्यवादी की होती है, जिसने अनेकता में एकता तथा भिन्नता में अभिन्नता का अनुभव किया और ब्रह्म को देखा है।

मनुष्य जब अपने आपको भूल जाता है, उसे अपने शरीर तक की सुध नहीं रहती, वह एकाग्र-चित्त होकर सम्मोह—उन्माद—स्वप्न की दशा को प्राप्त होता है, तब उसके अध्यात्म-चक्षु खुल जाते हैं, और वह उपर्युक्त बातों का अनुभव करने लगता है। वर्डस्वर्थ ने इस अवस्था का बड़ा अच्छा चित्रण किया है—

"That serene and blessed mood
In which...the breath of this Corporal frame,
And even the motion of our human blood,
Almost suspended, we are laid asleep
In body, and became a living soul.
While with and eye made quiet by the power
Of harmony, and the deep power of joy,
We see into the life of things."

रहस्यवादी प्रकृति में एकता का चित्र देखता है—संसार के सभी चर-अचर प्राणियों के भीतर एकता है, यह उसका परम विश्वास है। अतएव वह संसार की एक चीज़ को दूसरे का प्रतिरूप मानता है, क्योंकि वह समझता है कि बहुत-सी विभिन्नताओं के रहते हुए भी एक में दूसरे का थोड़ा-सा अंश अवश्य है। मानव-प्रेम को वह स्वर्गीय प्रेम का प्रतिरूप समझता है, क्योंकि यद्यपि दोनो के कार्य-क्षेत्र अलग हैं, तथापि दोनो समान नियम से ही शासित होते हैं, तथा दोनो का परिणाम एक ही है। पतझड़ की गिरती हुई पत्तियों को वह इस-

लिये मनुष्य-जीवन की नश्वरता का प्रतिरूप मानता है कि वे दोनो एक ही नियम के दृष्टांत हैं। छायावाद अथवा रहस्यवाद का जन्म सर्वप्रथम पूर्व में ही हुआ था। उपनिषदों में केवल आत्मा को ही सच्चे ज्ञान का साधन माना गया है, सत्य का ज्ञान सिर्फ उसे ही प्राप्त हो सकता है। वह विश्वात्मा का अंश है, अतएव उसकी शक्ति अगाध है। प्लेटो ने भी अपने दो प्रसिद्ध प्रश्नोत्तरों—सिंपोसियम और फ़ेडरस—में रहस्यवाद का ही प्रतिपादन किया है। मिसर अलेक्ज़ेंड्रिया का प्रसिद्ध विद्वान् प्लोटिनस (Plotinus—A.I. 201'270) तथा उसकी शिष्य-मंडली ने, जो नियो-प्लेटोनिस्ट्स के नाम से पुकारी जाती है, रहस्यवाद का खूब प्रचार किया था। प्लोटिनस के संबंध में पोरफ़िरी (Porphyry) ने लिखा है कि छ वर्षों में—जो मैंने प्लोटिनस के साथ गुज़ारे—वह चार बार सम्मोहावस्था को प्राप्त करके ब्रह्म के साथ जा मिला था। मनुष्य की आत्मा के संबंध में प्लोटिनस का कहना है कि वह पहले ब्रह्म—विश्वात्मा—का अंश था; पर जब वह विश्वात्मा से अलग हुआ, तो उसे बड़ी ख़ुशी हुई, और आनंद के आवेश में पागल-सा होकर वह विश्वात्मा से बहुत दूर चला गया, तथा अधः जीवन के सुख-दुःख तथा अन्यान्य विषय-वासनाओं में लिप्त हो गया। फिर वह अपने सच्चे स्वरूप को भूल-सा गया। अब यदि वह पुनः अपने पुराने घर को लौटना चाहता है, तो उसके लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि वह जिस पथ से आया था, उसी पथ से वापस हो, और उसके लिये उसे सर्वप्रथम अपने आपको पहचानना चाहिए, जिससे वैसा करता हुआ वह स्वयं ब्रह्म को पहचान ले। प्लोटिनस का प्रभाव योरप के—विशेषकर ईसाई धर्म के—पंडितों पर ख़ूब पड़ा, यह उनके ग्रंथों से साफ़-साफ़ परिलक्षित होता है

सूफ़ी-मत के माननेवाले भी रहस्यवादी ही थे, और हैं। 'अनलहक़्-अनलहक़्' का पाठ करते हुए सूली पर चढ़ जाने-वाला मंसूर भी तो रहस्यवादी ही था।

"ज़ाहिदे गुमराह के मैं किस तरह हमराह हूँ ;
वह कहे अल्लाह 'हू' और मैं कहूँ अल्लाह हूँ।"*

में उसने बड़ी सूक्ष्मता-पूर्वक रहस्यवाद की उस अवस्था का ज़िक्र किया है, जो पहुँचे हुए रहस्यवादी को ही प्राप्त है। आधुनिक समय में डॉक्टर इक़बाल भी शुरू में सूफ़ी ही थे, और महाकवि अकबर का तो यह जीवन-सिद्धांत था। अकबर के—

"ख़ुदी व बेख़ुदी, दोनो हैं अक्स - सूरते - जाना ;
उसी को जल्वागर पाते हैं, जिस आलम में जाते हैं!"

आदि शेरों में रहस्यवाद का पूरा आभास मिलता है। योरप में और देशों की अपेक्षा इँगलैंड को ही सच्चे रहस्यवादियों को उत्पन्न करने का श्रेय अधिक है। जॉर्ज फ़ॉक्स हेनरी, मूर, जॉन स्मिथ, जॉन डोन, हेनरी भौगन, क्राशौ, जॉर्ज हरबर्ट, विलियम ब्लेक, कार्लाइल, पेटमूर, ब्राउनिंग, क्रिस्टिना रौसेटा, वर्ड्सवर्थ, शेली, टॉमसन, आदि सभी सच्चे रहस्यवादी थे। इँगलैंड के आधुनिक कवि यीट्स तथा अंडरहिल भी रहस्यवादी हैं। प्राचीन हिंदी-साहित्य में रहस्यवाद की बड़ी कमी है। सूर और तुलसी-जैसे भक्त कवियों में भी रहस्यवाद का अभाव ही है। हाँ, प्राचीन कवियों में कबीर को हम रहस्यवादी कह सकते हैं। कबीर के अनेक पदों में छायावाद की छाप पड़ी है। उदा-हरण-स्वरूप कबीरदासजी के कुछ पद नीचे दिए जाते हैं—

(१)

पानी बिच मीन पियासी, मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी।

---

* हू=१. भय, २. ईश्वर का एक नाम।

आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी ;
घर में बस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजत जासी ।
मृग की नाभि माँहि कस्तूरी, बन-बन खोजत जासी ;
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिलै अबिनासी ।

(२)

माको कहाँ ढूँढ़ो बंदे, मैं तो तेरे पास में ;
ना मैं बकरी, ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी-गड़ास मे ,
नहीं खाल में, नहीं पूँछ में, ना हड्डी, ना मास में ;
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे-कैलास मे ,
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवास मे ;
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सब साँसों की साँसों में ।

(३)

संतौ जोग अध्यातम सोई ।
एकै ब्रह्म सकल घर व्यापै दुतिया और न कोई । इत्यादि ।

रहस्यवाद (छायावाद) का सभी साहित्यों में आदर होता आया है, क्योंकि इस संसार का सच्चा ज्ञान सच्चे रहस्यवादी को ही प्राप्त है । उसके लिये ससार की कोई भी वस्तु तुच्छ नहीं, और न नवीन ही है । सच्चे रहस्यवादी का ध्येय क्या होना चाहिए, इसे कविवर ब्लेक ने इन चार पंक्तियों में बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है—

To see a world in grain of sand
And a Hcaven in a wild flower,
Hold Infinity in the palm of your hand
And Eternity in an hau.

अर्थात् सच्चे रहस्यवादी का ध्येय बालू के एक छोटे-से कण में एक संसार को और वन के एक फूल में स्वर्ग को देखना

तथा करतल में असीमता को और एक घटी में अनंत को बाँध रखना है।

वर्तमान हिंदी-साहित्य-संसार में जो रहस्यवाद (छायावाद) का अर्थ समझा जाने लगा है, वह ग़लत तो है ही, खेद-जनक भी है। ऐसी कविताओं को, जिनके कोई अर्थ न हों, छायावादी कहना छायावाद का अपमान करना है। छायावाद का तो हिंदी-साहित्य में हार्दिक स्वागत होना चाहिए। और, यदि हिंदी-साहित्य-संसार सच्चे छायावादी कवियों को जन्म दे सके, तो इसे सौभाग्य समझना चाहिए। पर सोने की चमक से काम न चलेगा, वास्तविक सोना होना चाहिए।

छायावाद तथा रहस्यवाद

हिंदी-साहित्य में समय-समय पर छायावाद तथा रहस्यवाद का काफ़ी उल्लेख होता रहा है। जितने नए लेखक विश्वविद्यालय की पदवियों के साथ पैदा होने लगे हैं, साहित्य में शीघ्र ही स्थान अधिकृत कर लेने के विचार से, वे हिंदी के रंग-मंच पर छायावाद तथा रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए ही पदार्पण करते हैं। साथ ही अपनी राय भी कुछ ऐसे बुज़ुर्गाने ढंग से पेश करते हैं, जैसे उनके सिवा हिंदी में छायावाद तथा रहस्यवाद का मतलब किसी ने समझा ही न हो। कोई कहते हैं, छायावाद एक और तत्त्व है, रहस्यवाद एक और। कोई कहते हैं, नहीं, दोनो का यथार्थतः एक ही अर्थ है। किसी का कहना है, हिंदी में आधुनिक कवि जो ज़रा अच्छी, पढ़ने लायक़, सरस कविताएँ कर लेते हैं, वे सब छायावादी या रहस्यवादी कवि हैं। कोई कहते हैं, नहीं, उनमें भी भेद है। उनमें कुछ ऐसे हैं, जो छायावाद की कोटि में आते हैं, और कुछ ऐसे, जो रहस्यवाद की कोटि में। किसी का कहना है, चूँकि आजकल के कवि नौजवान हैं, इसलिये वे रहस्यवादी कवि तो कदापि हो ही नहीं सकते। पता नहीं, नौजवानी से रहस्यवाद का कौन-सा जातीय विरोध है। कुछ नवयुवक, जिन्होंने कल ही कॉलेज छोड़ा है, प्रोफ़ेसरों के लेक्चर के असर से प्रोफ़ेसर ही बने हुए, वैसी ही प्रवीण भाषा में, वैसा ही व्यक्तित्व ज़ाहिर करते हुए, बड़ी मुश्किल से कबीर के बाद रवींद्रनाथ को रहस्यवादी कवि मानते हैं, और

वह भी कब, जब दो कोटियाँ तैयार करके पहली में कबीर साहब को बैठा लेते हैं। इस तरह के लेखों से, जिनका दूसरों पर प्रभाव डालना और इस तरह अपनी प्रसिद्धि फैलाना ही उद्देश्य है, हमारा विचार है कि न तो साहित्य ही लाभवान् होता है, और न वे समालोचक लेखक ही। कारण हम जानते हैं, उन उल्टी आलोचनाओं का प्रभाव छायावाद या रहस्यवाद के आधुनिक कवियों पर बिलकुल नहीं पड़ता। उल्टे वे कवि ही उन समालोचनाओं की खिल्ली उड़ाते और अपने सिद्धांत पर ज्यों-के-त्यों डटे रहते हैं। हमें दोनो तरफ़ की बातों के सुनने का मौक़ा मिला है। हम जहाँ तक समझते हैं, छायावादी नाम से प्रसिद्ध कवियों की युक्तियाँ अधिक ज़ोरदार होती हैं, और साथ ही वे साहित्य के भांडार में एक कृति रखने का कष्ट स्वीकार करते हैं। वे व्यर्थ के वाद-विवाद ही में नहीं पड़े रहते। दूसरे, उनका कहना भी विचार-योग्य हुआ करता है। उन्हीं कवियों में से एक का कहना है कि अभी कविता के विभाग करने की आवश्यकता नहीं। उसकी केवल इतनी ही जाँच काफ़ी है कि वह कविता कविता की दृष्टि से तो गिरी हुई नहीं। फिर मानसिक विश्लेषण तथा जीवन की गूढ़ समस्याओं पर की गई कविताएँ यदि रहस्यवाद की कोटि में जाने लायक़ होंगी, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। वे कभी-न-कभी अपना स्थान ज़रूर अधिकृत कर लेंगी। यह विवाद तो व्यर्थ के लिये हो रहा है। हमें भी यह बात जँचती है। उत्तमोत्तम कृतियों से साहित्य को अलंकृत करना ही हमारे कवियों का प्रधान कर्तव्य है, और उसी तरह उनके आलोचकों को चाहिए कि मौलाना रूम और गेटे आदि के केवल नामों से अपने लेख की पंक्तियाँ न बढ़ाकर, आधुनिक कवियों की निष्पक्ष आलोचना

और कविताओं के गुण-दोषों का विवेचन करें। इस तरह नए आलोचक भी कवियों को नई सूझ दे सकेंगे, और कवि भी अपनी कमजोरियों को सुधारते हुए उत्तमोत्तम कृतियाँ साहित्य की भेंट करते रहेंगे। रहस्यवाद की व्याख्या हम लोगों ने बहुत पढ़ी है, और हम जानते हैं कि आधुनिक कवियों की अनेकानेक पंक्तियाँ रहस्यवाद की उत्तम कोटि तक पहुँची हुई हैं।

कितने ही महाशय हैं, जो कबीर के सिवा ब्रजभाषा या हिंदी में दूसरा छायावादी कवि मानते ही नहीं। अभी उस दिन एक छायावादी कवि ने अपने व्याख्यान में रामायण को रहस्यवाद ही का ग्रंथ सिद्ध किया। कवि महोदय की युक्तियाँ ये थीं—

"तमाम रामायण-ग्रंथ रूपक है। उसका भीतरी रहस्य कुछ और है। राम के मानी हैं शांति और रावण के मानी हैं अशांति या चीत्कार। राम और रावण की लड़ाई शांति और अशांति का समर है। रामायण की भूमिका जहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखी है, वहां उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि रामचरित-मानस क्या है। रामचरित-मानस-सरोवर से मन का उल्लेख है, चाहे उसे किसी व्यष्टि का मन समझिए, चाहे समष्टि का। उन्होंने लिखा है—

रघुपति - महिमा अगुन, अबाधा ;
बरनब सोइ बर बारि अगाधा।

यहाँ भगवान् श्रीरामचंद्र की अगुण महिमा ही ब्रह्मरूपी निर्मल वारि होती है। उस मन में जो शीतलता का जल है, वह ब्रह्म है, और वह श्रीरामचंद्रजी की अगुण महिमा है। इस वारि तक जाने के लिये चार घाट हैं—'घाट मनोहरि चारि।' ये घाट और कुछ नहीं, चारो मार्ग हैं—ज्ञान, कर्म, भक्ति और

योग। फिर हर घाट में सात सीढ़ियाँ हैं। ये सीढ़ियाँ योगियों के सातों चक्र हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार। सहस्रार में ब्रह्म है, इधर अंतिम सोपान में पानी है।" इस तरह तमाम रामायण रूपक सिद्ध होती है। या यों कहिए, यहाँ, रहस्यवादी ढंग से ही, राम की चरित्र-वर्णना की गई है।

इस तरह एक-दो नहीं, प्रायः अधिकांश भक्त कविगण रहस्य-वादी ठहरते हैं। जीवन के जटिल-से-जटिल आभ्यंतर रहस्यों का उद्घाटन करनेवाले वहाँ के त्यागी भक्त कविगण ही थे। कबीर में ज्ञान की मात्रा अधिक है, इसलिये उनका रहस्यवाद स्पष्ट समझ में आ जाता है। वह कलाकार कवि नहीं थे, इस-लिये उन्होंने जो कुछ भी कहा, सीधे ढंग से कहा। मौलाना रूम, हाफ़िज़ उमर खय्याम, गेटे, शेली आदि कवियों ने कविता की कला प्रदर्शित की है। इसी तरह हिंदी के नवयुवक कवि भी कला के भीतर से रहस्यवाद की रचना करते हैं। कीट्स यदि २८ वर्ष की उम्र तक पुष्ट-रचनाएँ लिखकर रख जा सकता है तो क्या कारण है कि हमारे नवयुवक कवि सफल कविता नहीं कर सकेंगे? समालोचकगण ज़रा समझ-कर लिखा करें।

छायावाद

आजकल अपने देश में क्रांति का युग है। प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति की धूम है। रूढ़ि तथा अपरिवर्तन का पुजारी भारत आज क्रांति का क्रीड़ा-स्थल बन रहा है। न केवल राजनीतिक क्षेत्र में, अपितु सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में भी आज क्रांति मच रही है। यहाँ तक कि जो लोग यह भी नहीं जानते कि क्रांति किस चिड़िया का नाम है, वे भी क्रांति कर रहे हैं। बहुत दिन हुए, सीमा-प्रांत में भी कुछ अशांति मची थी। वहाँ के लोगों ने ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था। बीच में सुना था कि वे कुछ शर्तों पर संधि करने के लिये तैयार थे। उन शर्तों में से कुछ ये हैं—

(क) मलंग गांधी को छोड़ दिया जाय।

(ख) इनक़िलाब को छोड़ दिया जाय।

(ग) शराब की दूकानें बंद कर दी जायँ।

शर्तें कैसी मनोरंजक हैं। ब्रिटिश-सरकार भी चकराई होगी कि इनक़िलाब किस जेल में बंद है कि वह उसे छोड़ दे। परंतु, मेरी सम्मति में, अभी हमारे देश में क्रांति ने पदार्पण नहीं किया। दूरस्थित क्रांति को देखकर ही हमारी आँखों में चका-चौंध हो गई है, जिसका परिणाम यह है कि अब हमें सर्वत्र क्रांति-ही-क्रांति दिखाई दे रही है। राष्ट्रीय झंडा लेकर बाज़ार में निकल जाइए, पूरी क्रांति है। अछूतों के संबंध में एक प्रस्ताव पास कर डालिए एकदम क्रांति है। एक ट्रैक्ट छपवा

दीजिए, साहित्य-क्षेत्र में महाक्रांति हो जायगी। गांधी-टोपी पहन लीजिए, एक स्पीच झाड़ दीजिए या कुछ लोगों के साथ बैठकर भोजन कर लीजिए, यह सब क्रांति है। इतनी क्रांतियाँ हो रही हैं, किंतु हम अभी वहीं खड़े हैं। क्या यही तो छाया-वाद नहीं? हिंदी-जगत् में, पत्र-संपादन-विभाग में, संपादका-चार्य से नीचे कोई उपाधि ही नहीं। तुकबंदी की दो लाइन लिखकर कवि टैगोर से टक्कर लेने लगते हैं। एक-आध उपन्यास लिख डालने से उपन्यास-सम्राट् की उपाधि मिल जाती है। यही अवस्था साहित्य के अन्य अंगों की भी है। हमें आश्चर्य है कि इतने साहित्य-सम्राटों के रहते भी हमारे देश में हिंदी-साम्राज्य की सत्ता कोई स्वीकार ही नहीं करता।

जिस क्रांति का वर्णन हम ऊपर कर आए हैं, उसका एक परिणाम अवश्य हुआ है। आज हिंदी-भाषा में एक नए प्रकार की कविता बनने लगी है। अथवा यों कहिए कि वंग-साहित्य के कुछ अनुवादकर्ताओं या अनुकरणकारियों ने हिंदी-कविता में युगांतर उपस्थित कर दिया है। जिस प्रकार चिड़िया-घर में किसी नए पशु के आ जाने पर कुछ दिनों उसकी ख़ूब प्रदर्शनी होती है, समझ में नहीं आता कि वह किस जाति का प्राणी है, प्रायः सब लोगों की जिह्वा पर उसी की चर्चा रहती है, इसी प्रकार जब छायावाद की नई कविता-वधू यहाँ पधारी, तो हिंदी-साहित्य-संसार में हलचल मच गई। आजकल जाति-पाँति-तोड़क मंडल का बोलबाला है, इसलिये यह आवश्यक नहीं कि वधू वर के समान वर्ण की ही हो। हिंदी के कुछ अप-टु-डेट समाचार-पत्रों की बग़ल में नई कविता को देखकर पुराने सहृदय चकित रह गए। वे उसके नूतन वेष-विन्यास,

भाषा-भूषादि द्वारा उसकी जाति का निर्णय न कर सके। कुछ अन्य पत्रिकाओं में इस प्रकार के काव्य को देखकर कई मन-चलों का संदेह इससे भी आगे बढ़ गया। उन्होंने समित्पाणि होकर जिज्ञासा की, तो पता चला कि यही तो छायावाद है। सर्वत्र स्वतंत्रता का आंदोलन है। इस समय कविता भी छंदों के नियम की क़ैद में क्यों रहे। उसने अपना छंद स्वच्छंद कर लिया है। आवश्यकतानुसार आविष्कार हो ही रहे हैं। आज इंजेक्शन के द्वारा बूढ़े जवान हो रहे हैं। हैट लगाकर काले गोरे बन रहे हैं। सुना है, नाटे क़दवालों को लंबा करने का भी कोई उपाय निकल आया है। मतलब यह कि जमाना ही क्रांति का है। परमात्मा ने जिसको जैसा बनाया है, वह वैसा रहना नहीं चाहता। स्त्रियाँ पुरुष बन रही हैं, और पुरुष स्त्री बनना चाहते हैं। इसलिये इस कविता के शब्द भी अपना कोई नियत लिंग नहीं रखते, आवश्यकतानुसार बदलते रहते हैं। किसी नियम में चलना पराधीनता का सूचक है, अस्वा-भाविकता का द्योतक है। कविता तो स्वाभाविक वस्तु है। उसका व्याकरण, वाक्य-रचना, नियमों के साथ भला क्या संबंध ? क्या कहीं रोना या हँसना भी नियमों के अनुसार होता है ? क्या लताओं तथा वृक्षों में पत्र-पुष्प ज्यामिति अथवा आलेख्य-कला के नियमों के अनुसार लगते हैं ? इसलिये कविता में भी इस प्रकार का कोई नियम न होना चाहिए। शेष रही यह बात कि उसका अर्थ किसी की समझ में आता है या नहीं ? छायावाद की कविता के संबंध में यह प्रश्न करना सबसे बड़ी गुस्ताख़ी है। देखिए, चंद्रमा भी तो परमात्मा की कविता है, और वह भी कितनी सुंदर ! किंतु उस चंद्रमा का शब्दार्थ क्या है ? शरत्काल की मोहिनी ऊषा, वर्षा के दिव्य

सायंकाल क्या कोई नपे-तुले वाक्य बोलकर संदेश देते हैं। व्याकुल वीणा की आतुर तंत्री किस भाषा में बोलकर सहृदय के हृदय में वेदना उत्पन्न कर देती है? इसलिये यदि इस कविता में कोई ठीक-ठीक वाक्य-रचना नहीं है, या कोई एक पूर्ण अर्थ नहीं बनता है, तो क्या हानि है? उसका एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर स्वयं कविता है। वह स्वतंत्र है। उसका अर्थ समझने की शक्ति सर्व-साधारण में नहीं हो सकती, क्योंकि वह असाधारण वस्तु है। कहीं-कहीं तो अर्थ समझ में आता ही है, शेष स्थलों में अनुमान कर लेना चाहिए कि वहाँ भी अर्थ होता ही। साधारण कविता का अर्थ सीमित तथा निश्चित होता है, किंतु इस कविता का अर्थ असीम तथा अनंत होता है। समझनेवाले की रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार वह बदलता रहता है। यह तो कौशल है—विभूति है। "जिनकी रही भावना जैसी; प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।" शब्द ब्रह्म है, ब्रह्म सर्वमय है, इसलिये इस कविता का कोई निश्चित स्वरूप नहीं। यह भी सर्वमय है। साधारण कविता में उन्हीं शब्दों और अर्थों का प्रयोग किया जाता है, जो लोक में होते हैं। किंतु इस कविता में ऐसे शब्दों तथा अर्थों का प्रयोग होता है, जो इस लोक में ढूँढ़ने पर भी न मिलें। कवि ने अंतर्जगत् की झाँकी ली, वहाँ उसने वे वस्तुएँ देखीं, जिनकी सत्ता इस स्थूल संसार में नहीं। अब कवि इन लौकिक शब्दों द्वारा अपने उल्लास, अपनी वेदना, अपने क्षोभ को कैसे वर्णन करे? वह चटपट शब्दों की टकसाल में पहुँचा। सरस्वतीदेवी हाथ बाँधकर खड़ी हो गईं। नए शब्दों की रचना होने लगी। पुराने शब्दों ने अपने अर्थ बदल डाले। मुहावरों ने अपनी मोम की नाक को तोड़-मोड़कर मौक़े के मुताबिक़ बना लिया। यही तो

अलौकिकता है। इसमें बेचारे कवि का दोष ही क्या? दोष तो मंद-मति पाठकों का है, जो लौकिक होकर अलौकिक कविता का अर्थ समझना चाहते हैं—ऐसा दुस्साहस करते हैं! साधारण कवि का कर्तव्य है कि वह अपनी रचना को अधिक-से-अधिक स्पष्ट, निस्संदिग्ध तथा सरल करे। किंतु छायावाद की कविता के लिये आवश्यक है कि वह यथासंभव अस्पष्ट, संदिग्ध तथा उलझी हुई हो। जब बनानेवाला यह देखे कि अपनी कविता का अर्थ अब वह स्वयं भी नहीं समझ सकता, तो जान ले कि कविता ठीक हो गई। छायावाद की कविता इतनी लजीली है कि वह अपने ही घर में, अपने माता-पिता से भी परदा करती है। इसी में उसकी सुंदरता है।

इतना लिखकर मैंने यह लेख समाप्त कर दिया और प्रातःकाल के भ्रमण के लिये मैं बाहर चला गया। कुछ समय पश्चात् लौटकर जब मैं अपने पढ़ने के कमरे में आया, तो मुझे मालूम हुआ कि उसके दूसरे दरवाज़े में से कोई चुपके-से निकला जा रहा है। मैं क़दम बढ़ाकर बाहर आया, पर फिर मुझे कुछ भी न दिखलाई पड़ा। यद्यपि निश्चय-पूर्वक उस व्यक्ति के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता, तथापि यह निर्विवाद है कि वह कोई पुरुष न था। मैंने मेज़ पर दृष्टि डाली, और अपने काग़ज़ों को उलटा-पलटा, तो मालूम हुआ कि उनमें कुछ पृष्ठ बढ़ गए हैं। मैं उन्हें एकदम पढ़ गया, मुझे पता लगा कि इन पृष्ठों में किसी ने मेरे ऊपर लिखे लेख का जवाब दिया है। जवाब मुझे बहुत पसंद आया। मैं उसे इस लेख के पूरक के तौर पर यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देता हूँ—

भूमिका

तुमने ऊपरवाला लेख लिखकर मेरे साथ अत्यंत अन्याय

किया है। परंतु इसका उत्तरदायित्व बहुत कुछ मेरे शुभचिंतकों अर्थात् छायावाद के कुछ लेखकों पर ही है, इसलिये मेरा तुम पर रोष नहीं, प्रत्युत तुम्हारे द्वारा ही मैं अपनी सफ़ाई पेश करना चाहती हूँ। आशा है, तुम इसमें मेरी सहायता करोगे। तुम्हारी अलमारी में हिंदी के किसी अच्छे छायावादी कवि की कोई पुस्तक मुझे न मिल सकी, इसलिये अत्यंत आवश्यक होने पर भी उदाहरणों द्वारा मैं अपने वक्तव्य को अधिक स्पष्ट नहीं कर सकी हूँ। बहुत जल्दी में केवल सिद्धांत पर ही कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया है। यदि संभव हुआ, तो शायद कभी इस विषय का अधिक विस्तार से वर्णन कर सकूँ।

वास्तविक छायावाद

सूर्य के प्रखर प्रकाश में पर्वत, वनमाला, घाटी, नदी आदि वस्तुओं का वह सौंदर्य प्रकट नहीं होता, जो सायंकाल के मंद प्रकाश में। ढाक, सेमल आदि जब वसंत-ऋतु में खिलते हैं, तो ऊपर से लेकर नीचे तक फूल-ही-फूल हो जाते हैं। पत्तों के अभाव में उनका सौंदर्य नग्न हो जाता है। उनकी वह शोभा नहीं होती, जो कोमल किसलयों में अर्ध-प्रकाशित गुलाब, चमेली, बेला, मोतिया आदि की होती है। चित्रों की सुंदरता भी दिन में उतनी प्रस्फुटित नहीं होती, जितनी रात्रि के समय दीपक के कोमल प्रकाश में। यही सम्मति मानव-सौंदर्य के संबंध में उन लोगों की है, जो परदे के पक्षपाती हैं।

संसार के आदि से लेकर आज तक जितने भी उत्तम कवि हुए हैं, वे सब छायावादी थे। वे प्रकाशवादी या अंधकारवादी न थे। किसी वस्तु या घटना का सीधे-सादे ढंग से, ज्यों का-त्यों, वर्णन कर देना यदि प्रकाशवाद है, तो आजकल के बहुत-से छायावादी कवियों का ढंग एकदम अंधकारवाद कहलाना चाहिए।

संसार का जो स्वरूप हमारे इन चर्म-चक्षुओं के सम्मुख है, वह वास्तविक नहीं। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ;

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।

इसी भाव को तुलसीदासजी ने किस सुंदरता से पल्लवित किया है—

मोह-निसा सब सोवनिहारा ;
देखिय सपनु अनेक प्रकारा।
यहि जग-जामिनि जागहिं जोगी ;
परमारथी प्रपंच - बियोगी।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा ,
जब सब विषय-बिलास-बिरागा।

स्वप्न में हम अनेक वस्तुएँ देखते हैं, जो यथार्थ नहीं होतीं। इसी प्रकार मोह-रूप निशा के घोर अंधकार में हम लोग सो रहे हैं, और संसार-रूपी महास्वप्न देख रहे हैं। हमारा यह समस्त अनुभव एक महाभ्रम है। इस मोह-निशा में प्रपंच-वियोगी ज्ञानी ही जागते हैं। उनका अनुभव यथार्थ होता है। बौद्धों का विज्ञानवाद, शंकर का अध्यास, बर्कले का आइडियलिज्म (glealirm), प्लेटो का दृश्य जगत् तथा आदर्श जगद्वाद इस पहेली को ही सुलझाने का यत्न-मात्र है। इस संबंध में अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ का अनुभव जानने योग्य है। वह लिखता है—बचपन में मेरे लिये इससे अधिक कठिन बात कोई न थी कि मैं यह सोचूँ कि मैं भी मर सकता हूँ। इसके साथ तथा इसी प्रकार मैं अपने से पृथक् वाह्य वस्तुओं की बाह्य सत्ता को भी अनुभव नहीं कर

सकता था। मुझे जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता था, वह मुझे अपनी ही अमर सत्ता के अंतर्गत-सा प्रतीत होता था। पढ़ने के लिये विद्यालय जाते समय कई बार मैं वृक्षों या दीवारों से चिपट जाता था, ताकि मैं विचार-जगत् (glealirm) के गड्ढे से निकलकर बाह्य सत्ता को अनुभव कर सकूँ। कवि आगे लिखता है—मेरे जीवन में एक वह भी समय था, जब मैं अपने से बाहर किसी अतिरिक्त वस्तु की सत्ता का निश्चय करने के लिये उसे हाथ से धकेलकर देखता था। मैं हूँ, इस विषय में मुझे संदेह न हो सकता था, किंतु इससे अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु अभाव प्रतीत होती थी।

"Nothing" the poet tells us, "was more difficult for me in childhood than to admit the notion of death as a state applicable to my own being. With a feeling congenial to this, I was often unable to think of external things as having external existence, and I communed with all that I saw as something not apart from, but inherent in, my own immaterial nature. Many times while going to school I have grasped at a wall or tree to recall my-self from this abyss of idealism to the reality." And again: "There was a time in my life when I had to push against something that resisted, to be sure that there was anything outside of me. I was sure of my own mind: everything else fell away, and vanished.

सच्चा कवि बाह्य आवरण की आड़ में से वस्तु के वास्तविक स्वरूप को देख लेता है, यही उसका क्रांतदर्शित्व है (कवयः क्रांतदर्शिनः)। वह अपने अनुभव को शब्द-चित्र का रूप दे सकता है, यही उसका कविपन है। चित्रकार, मूर्ति-

कार, गायक, नट ये भी कवि हैं। इन सबकी आँखें आदर्श-जगत् में खुली रहती हैं। उस आदर्श को ये लोग अनेक रूपों में हमारे सम्मुख रखते रहते हैं। ऐसा करने के लिये उनके पास साधन भिन्न हैं। इस साधन भेद के कारण ही इनके नाम भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। सर्व-साधारण की दृष्टि उस तत्त्व तक नहीं पहुँचती, इसलिये इन कवियों के वर्णन हमें अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। बात यह है कि जो अंदर देख रहा है, वह बाहर के विषय में नहीं जानता; जो बाहर देख रहा है, वह अंदर के विषय में अज्ञ है। उनका पृथक्-पृथक् ज्ञान हाथी को देखनेवाले आठ अंधों के अनुभव के समान है। जो दोनो तरफ़ देख सकता है, वही वस्तुतः देख सकता है। और तो देखते हुए भी नहीं देखते। 'पश्यन्नपि न पश्यति।' एक किसान के लिये पावस की उठती नवमेघ-माला में इसके अतिरिक्त क्या सौंदर्य है कि उसके बरसने से कुछ ठंढक हो जायगी, उसे हल चलाने में विशेष कष्ट न होगा, उसकी फ़सल खूब अच्छी होगी। इस उपयोगितावाद को छोड़कर उसकी दृष्टि में वृष्टि का कोई भी सौंदर्य नहीं। एक विद्यार्थी की दृष्टि में मनोहर दिवस का महत्त्व केवल छुट्टी हो जाने से है। यदि छुट्टी न हुई, तो वह सुंदर दृश्य उसके लिये उलटा दुखदाई हो जाता है। बेचारे धोबी तथा ऐसा ही अन्य व्यवसाय करनेवालों के लिये वर्षा-ऋतु सच्चे अर्थों में 'बैरिन बरखा' हो जाती है। किंतु कवि के लिये वर्षा-ऋतु के एक-एक अंश में कितना संदेश भरा हुआ है। उसे तो एक एक बूँद बोलती प्रतीत होती है। एक-एक पत्ती से वह बात करता है। एक-एक फूल उसका अंतरंग सुहृद् होता है।

कालिदास की शकुंतला को अपनी बहन प्रियंवदा तथा अन-

सूया से शायद वह प्रेम नहीं, जो तपोवन की नवमल्लिका, वन-ज्योत्स्ना तथा सहकार से है। आश्रम का मृग-शिशु उसे पुत्र से अधिक प्रिय है। कुमारसंभव की पार्वती को जो प्रेम अपने लगाए लता-वृक्षों से था, वह अपनी कोख से उत्पन्न किए स्कंद से न था। कवि लिखता है—

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्
घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत ;
गुहोपि येषां प्रथमा प्रजन्मनां
न पुत्रवात्सल्य मया करिष्यति ।
अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्त था च
तस्यां हरिणा विशश्वसुः ;
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः
सखीनाममिमीत लोचने ।

इस प्रकृति-प्रेम का वर्णन शेक्सपियर ने अनेक स्थलों पर किया है। उदाहरण के लिये मैं केवल एक पेश करता हूँ—

"Hath not old custom made this life more sweet
Than that of painted pomp? Are not these woods
More free from peril than the envious court?
Here feel we but the penalty of Adam,
The seaso ns' difference, as the icy fang
And churlish childing of the winter's wind,
Which, when it bites and blows upon my body,
Even till I shrink with cold, I smile and say
This is no flattery; there are councillors
That feelingly persuade me what I am.

"Sweet are the usese of adversity,
Which like the toad, ugly and venomous,
Wears yet a precious jewel in his head;
And this our life, exempt from public haunt,
Finds tongues in trees, books in the running brooks,
Sermons in stones and good in everything."

परमात्मा सबसे बड़ा कवि है, उसका शब्दमय काव्य वेद तथा अशब्द-काव्य यह प्रकृति है। जब हम इस प्रकृति के साथ अपना संबंध स्थापित करना चाहते हैं, तो यह हमें अपनी भाषा स्वयं सिखा देती है। अपने अवाक् बच्चों तथा घर के पालतू पशुओं से भी सब बातचीत करते ही हैं, गूँगे की मा अपने बच्चे से कितनी बातें करती है। इसी प्रकार कवि तथा प्रकृति में भी स्पष्ट भाषा द्वारा वार्तालाप होता है। शेक्सपियर ने ऊपर की कविता में उस वार्तालाप का कैसा सुंदर वर्णन किया है। साधारण लोग अपनी दुनियादारी में फँसे रहकर या पुस्तकों के कीड़े बनकर इस वार्तालाप-सुख से वंचित हो जाते हैं। हममें से कितने ऐसे हैं, जिन्होंने कभी गंगा-तट पर बैठकर, उसकी अनंत धारा पर दृष्टि-पात करते हुए उसमें अपनी चेतना को कुछ क्षण के लिये विलीन कर दिया है? कितनों ने क्षितिज से उठती हुई संध्याकालिक मेघ-सोपान-पंक्ति पर पद-न्यास कर स्वर्ग की सैर की है? कितनों ने निस्तब्ध निशीथ में तारों पर टकटकी लगाकर उनके दिव्य मूक संगीत को सुना है? बात यह है कि प्रकृति अपरिचय के कारण हमारे लिये एक बंद पुस्तक हो गई है। जो उससे बातचीत करता है, वह हमें पागल प्रतीत होता है, उसकी बातचीत को हम बहक कहते हैं। कारण यह है कि आदर्श-जगत् इस दृश्य-जगत् से भिन्न है। यह जगत् तो उसकी छाया-मात्र है। कवि भी तो आखिर

मनुष्य ही है। उसकी भी वही भाषा है, जो हमारी। किंतु आदर्श-जगत् के पदार्थ यहाँ के पदार्थों से कुछ भिन्न हैं। किंतु कवि के पास उन पदार्थों के लिये अतिरिक्त शब्द या भाषा नहीं है। इसलिये वह लौकिक भाषा के इन शब्दों को अपने आवश्यकतानुसार बदल डालता है, तथा उनके द्वारा अलौकिक पदार्थों का वर्णन करने का यत्न करता है। इस अवस्था में उसकी भाषा में, उसके भाव-प्रकाशन में गूढ़ता, गहनता, अस्पष्टता होना बिलकुल स्वाभाविक है। छायावाद-कविता की सर्वप्रथम पुस्तक वेद है। उसमें एक मंत्र है—

> तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्नु अन्तिके ;
>
> तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।

हम लोगों के लिये परमात्मा कहीं भी नहीं है। परंतु क्रांत-दर्शी को वह सर्वत्र दिखलाई पड़ रहा है। वह अपने अनंत, असीम भाव को लौकिक असमर्थ भाषा में कैसे प्रकट करे — यही छायावाद हो गया। कबीर ने कैसा सुंदर कहा है—

> आतम-अनुभव-ज्ञान की जो कोइ पूछे बात,
>
> सो गूँगा गुड़ खाइके कहै कौन मुख स्वाद।
>
> ज्यों गूँगे के सैन को गूँगा ही पहचान,
>
> त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञान होय सो जान।

कभी-कभी दृश्य बायस्कोप के फ़िल्म की तरह प्रतिक्षण बद-लता रहता है। कवि भागती हुई भाषा में उसका चित्र बनाना चाहता है, उसका एक वाक्य पूरा नहीं हो पाता कि दूसरा शुरू हो जाता है। एक शब्द से उसका काम नहीं चलता, वह दो-दो, तीन-तीन शब्दों की क़लम लगाकर अपना काम चला लेता

है। वास्तविक कविता तो यही है। बालकांड में तुलसीदासजी ने श्रीरामचंद्रजी के मुख से श्रीसीताजी का वर्णन अद्भुत लक्ष्मी के रूप में करवाया है। उसमें कवि ने कुछ-कुछ इसी ढंग का आश्रय लिया है। इस प्रकार उत्तम कवियों के पुनः-पुनः व्यवहार से उस वास्तविक जगत् के कुछ पदार्थों तथा उनके वाचक पदों का ज्ञान साधारण लोगों को भी होने लगता है। तब वे भी कल्पना द्वारा उस आदर्श-जगत् का चित्र अपनी आँखों के सम्मुख बनाते हैं। कभी-कभी उन्हें उस जगत् की झाँकी भी मिल जाती है, परंतु अत्यंत क्षणिक। तब वे पुनरंतः-प्रेक्षण (Reintsapetcon) द्वारा उन उधार लिए हुए शब्दों में अपनी झाँकी या कल्पना का वर्णन करते हैं। ये मध्यम कोटि के कवि होते हैं। एक तीसरे प्रकार के कवि हैं, जो उस अदृश्य जगत् की झाँकी कभी नहीं लेते, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उस नई भाषा के शब्दों के द्वारा भी उनके हृदय में कोई निर्देश जाग्रत् नहीं होता, तो भी वे एक कला के तौर पर उन सुंदर शब्दों की एक ऐसी लड़ी बनाते हैं, जो बड़ी मोहिनी प्रतीत होती है, किंतु उसके भीतर उन्हें बाँधनेवाला सूत्र नहीं होता। उन्हें देखकर जनता यह समझती है कि यह भी कोई उत्कृष्ट कविता है, जो अत्यंत गहन होने के कारण हमारी समझ में नहीं आ रही है। परंतु यथार्थ में देखा जाय, तो वहाँ वस्तुतः ही शब्द-संग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। ये शब्द इतने निर्देशक होते है कि अलग-अलग भी रहकर अपनी ध्वनि से बहुत-सा अर्थ दे डालते हैं। किंतु उनको मिलकर एक अर्थ नहीं बनता।

असली छायावाद की कविता निरर्थक नहीं, अपितु प्रायः द्व्यर्थक अथवा दोहरी होती है। उसमें एक बिंब-प्रतिबिंब भाव-

सा दृष्टिगोचर हुआ करता है। लौकिक भाषा के शब्द होने के कारण एक अर्थ लौकिक तथा विषय अलौकिक होने के कारण दूसरा अर्थ अलौकिक-सा प्रतिभासित होता है। शायद इसीलिये इसका नाम छायावाद है। उपनिषद् छायावाद की अत्युत्तम रचनाएँ हैं। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, कबीर, ठाकुर, ये सब छायावाद के सिद्धहस्त लेखक हैं।

रहस्यवाद और हिंदी में उसका स्वरूप

हिंदी-संसार में रहस्यवाद के संबंध में विचित्र-विचित्र धारणाएँ व्यक्त की जा रही हैं। ऐसे-ऐसे कवियों को भी रहस्य-वादी कवियों की कोटि में ढकेला जा रहा है, जो रहस्यवाद से कोसों दूर हैं। इस युग की हिंदी-कविता एक विशेष परिपाटी का आविर्भाव कर रही है। हिंदी में यह सर्वथा नई वस्तु है। भाव-जटिलता और भाषा-क्लिष्टत्व उसके प्रमुख अंग हैं। इस अराजकता को देखकर साधारण आलोचक उसे सहसा रहस्य-वादी कविता कहने लगता है। जहाँ कहीं कठिनता दिखाई पड़ी, वहीं रहस्यवाद आ गया। वास्तव में भाव-गंभीरता, भाषा-क्लिष्टत्व तथा विचार-जटिलता के कारण अभिव्यक्ति में जो दुरूहता आ जाती है, वह रहस्यवाद नहीं है, वरन् वस्तु के अपूर्ण प्रवेश तथा आधेय की अक्षमता और तथ्य के आलोक की लपक-मात्र के कारण जो अभिव्यक्ति में निर्देश-मात्र आ जाता है, उसे रहस्यवाद कह सकते हैं।

रहस्यवाद के वास्तविक स्वरूप के संबंध में हिंदी में जो भ्रम फैल रहा है, उसके निराकरण की आवश्यकता है, और उसके सच्चे स्वरूप की जानकारी भी अपेक्षित है। कुछ लेखों को छोड़कर इसके संबंध में जो कुछ भी लिखा गया है, वह बहुधा अस्पष्ट और पक्षपात-युक्त है। अर्वाचीन लेखकों ने रहस्यवाद का स्वरूप समझाने का चाहे कष्ट न उठाया हो, किंतु रहस्यवाद की प्रशंसा के पुल अवश्य बाँधे हैं। उनके लेख आलोचनात्मक

न होकर स्वयं रहस्य .य हो गए हैं, जिससे जिज्ञासु-मंडल तृप्त नहीं हो सका। दूसरी ओर प्राचीनवादी लेखकों में कविता की नवीन प्रगति की अराजकता का इतना भय समा गया है कि वे सारी प्राचीन पद्धति को विलीन हुई देखते हैं। अतएव नवीन विच्छृंखलता के अनादर की भावना उनमें जितनी ही वेगवती होती जाती है, उतना ही वे रहस्यवाद को कोसने लगे हैं। रहस्यवाद के विकृत स्वरूप को बुरा न कहकर रहस्यवाद को ही बुरा कहने लगे हैं। हिंदी-संसार रहस्यवाद के विवाद के उभय पक्ष के लेखकों से भली भाँति परिचित है।

इस विषय में अभी कोई पुस्तक देखने में नहीं आई। हाँ, पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित कराई है। कदाचित् अपने विचारों को लेख-रूप में व्यक्त करने के प्रयास में ही लेख का आकार बढ़ गया है, और उसका रूप विशद बन गया है। पं० रामचंद्रजी शुक्ल एक निर्बल-हृदय समालोचक हैं, परंतु रहस्यवाद के विवाद में उन्होंने काफ़ी भाग लिया है। विषय निष्पक्ष विवाद से सुबोध अवश्य होता है। शुक्लजी हिंदी-कविता की नवीन प्रगति के आरंभ से ही विरोधी रहे हैं, और बहुत सीमा तक उनका विरोध उपयोगी और सार-युक्त सिद्ध हुआ है। उन्होंने स्थान-स्थान पर इस प्रगति की निंदा की है, और गालियाँ भी खाई हैं। उनके 'रहस्यवाद' में इस विषय की बड़ी सुंदर और मार्मिक विवेचना की गई है। अँगरेज़ी कवियों में कौन रहस्यवादी है, और कौन नहीं? इसके संबंध में बड़ा भ्रम फैला हुआ था। इसका समाधान बहुत कुछ उक्त ग्रंथ से हो जाता है। वास्तव में अँगरेज़ी कवियों की ही उक्त ग्रंथ में चर्चा है, और रहस्यवाद के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की समीक्षा है। परंतु शुक्लजी

के ग्रंथ को पढ़ जाने के पश्चात् यही कहना पड़ता है कि ग्रंथ कुछ एकांगापन लिए हुए है। उन विचारों के साथ लेखक की अधिक सहानुभूति ज्ञात होती है, जो रहस्यवाद के प्रतिकूल हैं। निष्पक्ष-से निष्पक्ष लेखक की आलोचना में एकांगेपन की निर्बल उपस्थिति इससे अधिक और क्या प्रकट कर सकती है। लेखक के मस्तिष्क के किसी छोटे कोने में प्राचीन पक्षपात अभी विद्य- मान है। शुक्लजी क लिये भी कदाचित् यही संभव हो सकता है। परंतु वैसे शुक्लजी में कभी इस दुर्बलता के दर्शन नहीं होते। अस्तु।

हिंदी-रहस्यवाद का वर्तमान स्वरूप पश्चिमीय प्रतिकृति है, यह अब सभी मानते हैं। शुक्लजी का भी यही मत है। हिंदी का रहस्यवाद शब्द अँगरेजी के Mysticism का भाववाची है। छायावाद से रहस्यवाद की यथेष्ट व्यंजना नहीं होती। अँगरेजी के प्रसिद्ध कोष में रहस्यवादी उस व्यक्ति को कहते हैं, जिसे ज्ञानातीत सत्य के आध्यात्मिक निरूपण में विश्वास हो। कभी-कभी अध्यात्म-संबंधी विचित्र धारणा के उपहास के लिये और कभी-कभी ईश्वर और संसार-संबंधी असाधारण विवेचना की मखौल उड़ाने के लिये भी रहस्यवाद का प्रयोग किया जाता है। रहस्यवाद के व्यापक स्वरूप में संसार की बड़ी-बड़ी विभूतियाँ और छोटी-से-छोटी हस्तियाँ सम्मिलित हैं। संसार के बड़े-से-बड़े व्यक्तियों की कृतियों में रहस्यवाद की वृत्ति पाई जाती है, और धूर्त-से-धूर्त की प्रवंचना में भी उसका आभास दिखाई देता है।

सुख की आशा करना और उसके लिये सतत प्रयत्न करना मानव-समाज का आदिम व्यवसाय है। चिंताओं की शांति ही सुख का कारण है। ईश्वर और संसार का संबंध, संसार की

क्रियाशीलता का रहस्य, उसकी उत्पत्ति और लय का इतिहास सारे संसार को आदि काल से मुग्ध किए हैं। इस मुग्धता में विस्मय है, विस्मय में उद्वेगाग्नि है। इसीलिये चित्त क्षुब्ध और अशांत रहता है। क्षोभ और अशांति में सुख का ह्रास होता है। अतएव सुखापेक्षी नर-समाज का चिंतनशील समुदाय इस गुत्थी को सुलझाने के लिये अपनी सारी शक्ति अनंत काल से व्यय कर रहा है। मनुष्य ने अपना सारा ज्ञान उस अखंड सत्ता की खोज में लगा दिया, जिसका क्रियमाण स्वरूप यह सारा विश्व है। ससीम ज्ञान असीम ज्ञान की खोज का अभ्यास अनंत काल से कर रहा है, परंतु उसमें शांति नहीं मिली। अतएव असीम हृदय के अन्वेषण के लिये ससीम हृदय उत्कंठा से निकला। यही बात रहस्यवाद का मूल उद्गम है। चिंतवन-जगत् में जो ब्रह्मवाद अथवा अद्वैतवाद है, भावना-जगत् में वही रहस्यवाद कहलाता है। भाव-प्राबल्य-जन्य तद्रूप-शीलता में रहस्यवाद के प्रादुर्भाव का रहस्य है।

भारतीय ग्रंथों में रहस्यवाद की सुंदर व्याख्या गीता के अधोलिखित श्लोक में मिलती है—

> सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ;
> अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्

परंतु काव्य-गत रहस्यवाद का ज्ञान से संबंध न होकर हृदय से है। रहस्यवाद की विवेचना में वोन साहब (Voungham) ने उसे तीन स्थितियों में अवस्थित किया है—(१) दैवी भाव (Theopoltry), (२) दैवी ज्ञान (Theosophy), (३) दैवी उपासना (Theorgy)। वास्तव में काव्य-गृहीत रहस्यवाद पहली स्थिति की अभिव्यक्ति है। दूसरी और तीसरी से उसका संबंध नहीं। मानसिक विकास द्वारा ज्ञान से ऐक्य

अनुभव करना दूसरी बात है, और भावातिरेक द्वारा हृदय से भावात्मक ऐक्य स्थापित करना दूसरी बात। काव्य-स्वीकृत रहस्यवाद का संबंध दूसरे प्रकार से है, पहले प्रकार से नहीं। यद्यपि अंततः दोनो का आशय एक ही है, परंतु साहित्य में दोनो के क्षेत्र भिन्न हैं। एक को दर्शन के और दूसरे को काव्य के अंतर्गत रक्खा गया है। जहाँ-जहाँ एक का स्थान दूसरे ने लिया है, वहाँ-वहाँ अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो गई है। महाभारत-काव्य में गीता का समावेश उसके दार्शनिक मूल्य को बहुत कुछ कम कर देता है, और काव्य के प्रत्यक्ष विरोध होने से गीता के विचारों पर अतार्किक होने का दोष मढ़ा जाता है। इसी से गीता से भिन्न-भिन्न मत चल निकले हैं। इसी प्रकार कबीर महोदय ने विशिष्ट दार्शनिक 'वाद' को पद्य के कटहरे में बंद करने का कई स्थानों में प्रयत्न किया है। इसी से उनका काव्य कहीं कहीं बिलकुल भद्दा और नीरस हो गया है। उसके उदाहरण आगे दिए जायँगे। दूसरी ओर यदि कोई हृदय के भावों को अथवा तद्रूपत्व के भावावेश को दार्शनिक भाषा में लिखेगा, तो उसका महत्त्व आधा भी न रहेगा। गीता में भगवान् के विराट् स्वरूप की व्याख्या में भी रहस्यवाद की भावना उपस्थित है।

रहस्यवाद वास्तव में कोई 'वाद' नहीं है। यह एक प्रकार की मानसिक स्थिति है। भिन्न भिन्न रहस्यवादियों ने समूचे तथ्य का कोई-न-कोई अंग-निरूपण करके सत्य की अभिव्यक्ति में कुछ-न-कुछ नई बात कही है। उस महान् अखंड शक्ति के आलोक का आभास भक्तजनों को पृथक्-पृथक् कोण से मिला है*। उनकी अपनी मनोवृत्तियों ने उसका रूप सँभाला है।

* इस भाव की व्यंजना नीचे दिए हुए रूपक द्वारा सूफ़ी कवियो ने भली भाँति कराने का प्रयास किया है—

यही कारण है कि पहुँचे हुए संतों के अनुभव एक दूसरे से भिन्न और कहीं-कहीं परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं। अँगरेजी कवि वर्ड्सवर्थ को दैवी अभिव्यक्ति का साक्षात्कार प्रकृति के सान्निध्य से प्राप्त हुआ था, और इसीलिये वह प्रकृति का उपासक था, परंतु वही प्रकृति का स्थूल स्वरूप दूसरे रहस्यवादी कवि के लिये अखंड सत्ता के अवगत करने में विरोध उपस्थित करता था। परंतु यह प्रत्यक्ष विरोध रहने पर भी प्रत्येक रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति की तीव्रता में बड़ा साम्य है। इसी को आलोचकों ने प्रत्यक्ष विरोध में आभ्यंतरिक साम्य कहा है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार जीव और ईश्वर, प्रकृति और पुरुष में कोई द्वैतभाव नहीं है। इस मानसिक ज्ञान को भावना के क्षेत्र में रहस्यवादी कवि अभिव्यक्त करता है। परंतु अद्वैत की पूर्ण भावना की प्रतिष्ठा के लिये द्वैत का परोक्ष रूप से समर्थन हो जाता है। ज्ञेय और ध्येय की सार्थकता ज्ञाता और ध्याता की उपस्थिति से ही हो सकती है। अतएव यद्यपि इन उभय पक्षों का ऐक्य रहस्यवाद की रागात्मिका प्रवृत्ति का लक्षण है, तथापि उपासक और उपास्य, उभय पक्षों को आरंभ में अवश्य मानना पड़ता है। यह उपासना अथवा रहस्यमयी भावना के स्फुरण का पहला सोपान है, और अद्वैत की रागात्मिका प्रतिष्ठा उसका अंतिम स्वरूप है। इस सूक्ष्म विश्लेषण तक न पहुँचनेवाले व्यक्तियों को इसीलिये उपर्युक्त द्वैत में

सुनि हस्ती कर नाँव, अँधरन टोवा धाय कै ;
जेहि टोवा जेहि ठाँव, मुहमद सो तैसे कहा।
—मलिक मुहम्मद जायसी

अद्वैत और अद्वैत में द्वैत के सिद्धांत में विरोध दिखाई पड़ता है।

वास्तव में रहस्यवादी मानता है कि दैवी स्फूर्ति का कोई-न-कोई स्फुलिंग जीव के निर्माण में निहित है। उसी स्फुलिंग द्वारा—उसी दैवांश द्वारा—वह उस अखंड सत्ता की अनुभूति कर सकता है। रहस्यवादी का यह विश्वास है कि जिस प्रकार बुद्धि द्वारा मनुष्य भौतिक पदार्थों का निरूपण करता है, उसी प्रकार अध्यात्म भावना द्वारा रहस्यमय अखंड सत्ता का अनुभव कर सकता है। परंतु बुद्धि और भावना के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। जिस प्रकार बुद्धि के व्यवसाय में, तार्किक विश्लेषण में भावावेश से काम नहीं चलता, उसी प्रकार भावना के क्षेत्र में बुद्धि का प्रयोग व्यर्थ है। रहस्यवादी उसे मूर्ख समझता है, जो अध्यात्म निरूपण में बुद्धि का प्रयोग करता है।

यह करनी का भेद है, नाही बुद्धि-बिचार ;
बुद्धि छोड़ करनी करौ, तौ पाओ कछु सार * ।

—कबीर

---

* इस पद में 'करनी' शब्द का अर्थ समझ लेने की आवश्यकता है। यहाँ ज्ञान-कांड और कर्म-कांड की सापेक्षित विवेचना नहीं है। 'करनी' शब्द वेदोक्त कर्म-कांड के लिये नहीं आया है। संत लोग वास्तव में ऐसे कर्मकांड विरोधी रहे हैं। 'करनी' से यहाँ 'सुरत-शब्द' अभ्यास से तात्पर्य है। यह एक विशेष प्रकार का साधन है, जिसके द्वारा आध्यात्मिक निरूपण का विधान विवक्षित किया गया है। अर्थात् 'करनी' शब्द से संत उस दैनिक अभ्यास की ओर इंगित करता है, जिसके द्वारा अखंड ज्योति का साक्षात्कार होता है।

बाह्य पदार्थों का ज्ञान हम उनकी ओर देखकर अन्य पदार्थों के साम्य और वैषम्य द्वारा निर्धारित करते हैं, परंतु आभ्यंतरिक परिज्ञान की उपलब्धि मनुष्य को केवल तद्रूप होने से ही प्राप्त हो सकती है। एक रहस्यवादी के लिये जीवन प्रतिक्षण उन्नति करता चला जा रहा है। नए-नए खंडों का भावमय अनुभव-उद्घाटन पग-पग पर चकित करता है। रहस्य का उद्घाटन रहस्य को और भी रहस्यमय बनाता चला जाता है।

रहस्यवादी जीव के विभिन्न चित्रों और जन्मांतर के विभिन्न संस्करणों के समूचे संकलन को एक साथ तारतम्य में देखता है। इसलिये उसे जन्मांतर में विश्वास करना पड़ता है। आत्मा की नित्यता उसके रहस्यमय भाव-प्रासाद की नींव है। "न जायते म्रियते वा कदाचन' अथवा "न हन्यते हन्यमाने शरीरे" रहस्यवादी के अद्वैतवाद की पुष्टि ही करते हैं। "अजो नित्यः", "शाश्वतोऽयं पुराणो" में उसका अचल विश्वास रहता है। इस प्रकार के जन्मांतर में विश्वास कोई जाति-विशेष के रहस्यवादियों तक ही सीमित नहीं है। जन्मांतर*-सिद्धांत के घोर विरोधी ईसाइयों में भी रहस्यवादी कवि

---

*Our birth is but a sleep and forgetting.
The soul that rises with us, our life star,
Hath had els'ewhere its setting.
But like hailing clouds of glory
Do we come.

अर्थ—हमारा जन्म एक प्रकार की निद्रा और विस्मरण है। जो आत्मा हमारे साथ उठती है, वही हमारा जीवन-नक्षत्र है—वह अन्यत्र कहीं अवश्य डूबा होगा। हम देवत्व के प्रकाश से लिपटे हुए जन्म लेते हैं।

रहते हैं। जन्म-जन्मांतरवाद के कट्टर विरोधी, मुसलमान-धर्म के पोषक कविवर मलिक मुहम्मद जायसी ने भी सूफ़ी रहस्य-वादी होने के कारण जन्मांतरवाद की आभा दिखलाई है। 'पद्मावत' का 'सुआ' पूर्वजन्म का ब्राह्मण था। कबीर ने तो खुल्लमखुल्ला जन्मांतर माना है *। स्वयं अपने जन्म के लिये उन्होंने कल्पना की है—

पुरब जनम हम बाँम्हन होते ओछे करम तप हीना ;
रामदेव की सेवा चूकी, पकरि जुलाहा कीना।

* * *

दिवाने मन, भजन बिना दुख पैहो।
पहले जनम भूत का पैहो, सात जनम पछितैहो ;
काँटा पर कै पानी पैहो, प्यासन ही मरि जैहो।
दूजा जनम सुआ का पैहो, बाग बसेरा लैहो ;
टूटे पंख, बाज मँड़राने, अधफड़ प्रान गँवैहो।
बाजीगर के बानर होइहो, लड़िकन नाच नचैहो ;
ऊँच-नीच से हाथ पसरिहो, माँगे भीख न पैहो।

---

* इसका अर्थ यह नहीं है कि कबीर महोदय ने जन्मांतरवाद के प्रतिकूल कहीं नहीं लिखा—

गाँठी बाँधि खरच ना पठयो, बहुरि कियो नहिं फेरा ;
बीबी, बाहर महल मे, बीच पिया का डेरा।

* * *

अरे मन, समझ के लाद लदनियाँ।
सौदा करु तौ यहिं करु भाई, आगे हाट न बनियाँ ;
पानी पी तो यहीं पी भाई, आगे देख निपनियाँ।

* * *

तेली के घर बैला होइहो, आँखिन ढाँप ढपैहो ;
कोस पचास घरै में चलिहो बाहर होन न पैहो ।
पँचवाँ जनम ऊँट का पैहो, बिन तौले बोझ लदैहो ;
बैठे से तौ उठै न पैहो, छुरुचि-छुरुचि मरि जैहो ।
धोबी के घर गदहा होइहो, कटी घास ना पैहो ;
लादि लादि आपहु चढ़ि बैठी लै घाटे पहुँचैहो ।
पंछी माँ तौ कौवा होइहो, करर-करर गुहरैहो ;
उड़िके जाइ बैठि मैले थल गहिरे चोंच लगैहो ।
संत नाम की टेर न करिहो मन-ही मन पछितैहो ;
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, नरक निसानी पैहो ।

इसी प्रकार सूफी कवि जलालुद्दीन रूमी, हाफ़िज़, जामी, हल्लाज इत्यादि मुसलमानों में भी आत्मा की पुनर्भावना के चित्र मिलेंगे। भारतवर्ष के संत कवि तो थियासोफ़िस्ट लोगों की भाँति जन्मांतर के विश्वास के साथ-साथ विकासवाद को भी कहीं-कहीं स्वीकार करते दिखाई देते हैं—

जन्म एक गुरु-भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम ;
जन्म तीसरे मुक्ति पर चौथे में निरवान ।

परंतु यह सार्वभौमिक सिद्धांत नहीं है कि प्रत्येक रहस्यवादी जन्मांतर को माने ही। अँगरेज़ी-साहित्य में इसके अपवाद उपस्थित हैं। धर्म प्रचारक, विज्ञानवेत्ता तार्किक और दार्शनिक तथा रहस्यवादी में बड़ा भारी अंतर है। इस विभिन्नता का थोड़ा-सा दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है। विज्ञानवेत्ता की भाँति रहस्यवादी रहस्योद्घाटन के लिये बुद्धि से काम न लेकर अपनी निजी भावना और आंतरिक प्रेरणा का प्रयोग करता है। दर्शनकार नवीन शोध को सीधे सामने से लेकर अभिव्यक्त करता है। रहस्यवादी उसका परोक्ष निदर्शन करता

है। वह अनुभव करता है कि उसने अखंड ज्योति की लपक देखी है। उसने अनहद शब्द सुना है। उसने अमृत-कुंड के छींटों से स्नान किया है।

भरत अमिय-रस, झरत ताल जहँ, शब्द उठै असमानी हो;
सरिता उमड़ि सिंधु कहँ सोकै, नहिं कछु जात बखानी।

परंतु दूसरे उस पर विश्वास नहीं करते। अंधों की बस्ती में जिस प्रकार नेत्रवालों की कोई नहीं सुनता, और उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया जाता, उसी प्रकार असंस्कृत व्यक्तियों की भी स्थिति होती है। रहस्यवादी भावना सबमें नहीं होती। ऐसे लोग तो कदाचित् बहुत मिल सकते हैं, जिन्हें मनोवेगमय क्षणों में अस्पष्ट और कुंठित रूप में अखंड सत्ता की झलक मिली है, और मिलती है, परंतु ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम होंगे, जो इस अस्पष्ट और क्षणिक झलक का अभ्यास द्वारा अपनी रहस्यमयी भावना के लिये चिरस्थायी आलंबन बना लें, और अंततः अभ्यासी उस भाव के चरम लोक तक पहुँच जाय, जहाँ पहुँचकर इस आध्यात्मिक आलोक से पुनर्जीवित होकर संसार की प्रत्येक वस्तु हस्तामलकवत् देखने लगे।

That serene and blessed mood,

* * *

We see into the life of things.

देखने में साधारण प्रकार से रहस्यवादी साधारण प्रणाली के प्रतिकूल चलता है। वह पहले विश्वास करता है, और बाद में जानता है। वैज्ञानिक प्रणाली के यह प्रतिकूल है। परंतु तर्क-वितर्क की प्रणाली को रहस्यवादी व्यर्थ मानता है। अपने अनुभव की यथेष्ट व्यंजना उसे परमावश्यक है।

भाषा भावों के विकास से हमेशा पीछे रहती है। भाव की उत्पत्ति के बाद तद्रूप भाषा गढ़ी जाती है। भाषा चाहे कितनी

ही विकसित क्यों न हो, भावों की यथेष्ट व्यंजना संभव नहीं, इसलिये रहस्यवाद की कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य रूप में पाया जाता है। 'उपमा' के इतिहास से भी स्पष्ट है कि शब्द-संकोच के निराकरण के लिये ही 'अलंकार' का प्रयोग होता है। 'सुराही की गर्दन' में 'गर्दन' शब्द उपमा-स्वरूप ही मानव-शरीर-संगठन से गृहीत है। घर के बाहर कड़ी धूप की गर्मी की भाव-तीव्रता की उपयुक्त व्यंजना जब वक्ता इस वाक्य से कि 'गर्मी बहुत है', अनुभव नहीं करता है, और यथेष्ट व्यंजना के लिये जब विह्वल होता है, तब मस्तिष्क के द्वार खटखटाने पर उसे यह सूझ पड़ता है कि धूप नहीं है, यह तो आग बरस रही है। यही अपह्नुति अलंकार हो जाता है। यद्यपि यह स्थूल रूप से वस्तु-प्रतीक का उदाहरण नहीं है, जैसा पहला उदाहरण—अर्थात् सुराही की 'गर्दन'—है, परंतु यह भाव प्रतीक का सुंदर दृष्टांत है।

रहस्यवादियों का इन प्रतीकों के बिना काम ही नहीं चल सकता। उस अखंड ज्योति की उपयुक्त व्यंजना के लिये संसार की कोई भाषा पर्याप्त नहीं है। अतएव सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य है। रहस्योद्घाटन की अभिव्यक्ति कितनी कठिन है, इसका अनुमान केवल एक ही बात से हो सकता है, लगभग सभी संत-कवियों ने उस अखंड ज्योति के साक्षात्कार के आप्त सुख की अभिव्यक्ति में 'गूँगे के खाए हुए गुड़' की उपमा दी है। कारण यह कि सभी कवियों की व्यंजना की कठिनता एक-सी है। परंपरागत पुराण-गाथाओं द्वारा भी अभिव्यक्ति प्रणाली में सहायता मिलती है। अतएव परंपरागत पुराण-गाथाओं का आश्रय और प्रतीक-प्रयोग, दोनो रहस्यवाद के अभिव्यंजन-पक्ष के अनिवार्य अंग हैं।

प्रतीक-प्रयोग की भावना के अंतर्गत संसार के ऐक्य की भावना निहित है, इसलिये रहस्यवादी उसे अपनाता है। वह भी विश्वास करता है कि सब पदार्थों में तिरोहित साम्य है। मानवीय प्रेम में दैवी प्रेम का अध्याधार देखता है, इसलिये संकेत द्वारा उसमें दैवी प्रेम का आरोप करता है। प्रकृति में गिरती हुई पंक्तियों को देखकर मानव-समाज के ध्वंस का रहस्य सामने आ जाता है। हिलते हुए वृक्ष से प्रकंपित वृद्ध शरीर का चित्र उपस्थित हो जाता है।

बाढ़ी आवत देखि करि तरुवर डोलन लाग;
हमैं कटै की कछु नहीं, पंखेरू घर भाग *।
—कबीर

---

* कुछ उदाहरण कबीर के नीचे दिए जाते है—

(१) नैहर मे दाग लगाइ आई चुनरी।

(२) मेरी चुनरी मे परिगो दाग पिया!

(३) पिय, ऊँची रे अँटरिया तोरी देखन चली। ऊँची अँटरिया, जरद किनरिया, लगी नाम की डोरिया।

(४) का लै नैनी ससुर-घर ऐबो।

(५) आयो दिन गौने को मन होत हुलास।

(६) खेल़ रे नैहरवाँ दिन चारि।

(७) हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया।

(८) तोको पीव, मिलेंगे, घूँघट कर पट खोल रे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।

(९) मिलना कठिन है, कैसे मिलोंगी पिय जाय।
समुझि सोचि पग धरौं जतन से बार-बार डिगि जाय।
ऊँची गैल, राह रपटीली, पाँव नही ठहराय।
लोक-लाज कुल की मरजादा देखत ही सकुचाय।

प्रतीक-प्रयोग से अभिव्यक्ति में शक्ति आ जाती है। दैनिक जीवन में दांपत्य प्रेम अत्यंत तीव्र और व्यापक है।

---

(१०) दुलहिन गाओ मंगलचार, हमारे घर आए राम अवतार।

(११) बालक, आओ हमारे गेह रे,
तुम बिन दुखिया के हरे।
सब कोई कहैं तुम्हारी नारी, मोकों यह संदेह रे।
अन्न न भावै, नींद न भावै, गृह-बन धरै न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी, ज्यों प्यासे को नीर रे।
है कोइ ऐसा पर उपकारी पिय को कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भए हैं बिन देखे जिय जाय रे।

(१२) चली मैं खोज में पी की; मिटी नहिं सोच यह जी की।
रहे नित पास ही मेरे; न पाऊँ यार को हेरे।
विकल चहुँ ओर को धाऊँ; तबहुँ नहिं कंत को पाऊँ।
धरौं केहि भाँति सों धीरा; गयो गिर हाथ से हीरा।
कटी जब रैन की झाईं; लख्यो तब गगन में साईं।
कबीरा शब्द कहि भासा; नयन में यार को बासा।

(१३) छोड़े गेह-नेह लगि तुमसों; भइ चरनन लवलीन;
तालाबेलि होत घर भीतर, जैसे जल बिन मीन।
दिवस-रैन भूख नहिं निद्रा, घर अँगना न सुहाय;
सेजरिया बैरिन भइ हमको, जागत रैन बिहाय।
हम तो तुम्हारी दासी सजना, तुम हमरे भरतार;
दीनदयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार।
कै हम प्राण तजत हैं प्यारे, कै अपना करि लेव;
दास कबीर बिरह अति बाढ़यो, हमको दरसन देव।

* * *

समूचे जीवन क्षेत्र में उसका प्रभाव अद्वितीय है। इसीलिये कबीर, जायसी, मीरा, दादू, दरिया इत्यादि संतों में उसकी भरमार है। वास्तव में दांपत्य प्रेम के ही विशद मनोविकार द्वारा किसी अंश में रहस्यभावमय अखंड स्वरूप के दोनो पक्षों - संयोग और विप्रलंभ—की कुछ-न-कुछ अभिव्यंजना हो सकती है, अन्यथा असंभव है।

दैवी आलोक की ओर ससीम प्रकाश की लपक—उसके वेग और प्रयास की आतुरता विप्रलंभ दांपत्य रति द्वारा यत्किंचित् अभिव्यक्त किया जा सकता है। तथा ससीम और असीम का मेल—आप्त सुख की व्याख्या—संभोग दांपत्य रति की यथेष्ट व्यंजना से ही किसी अंश में बखाना जा सकता है।

गौने जाना, सिलसिली गैल में चलना, विरह में तड़पना, सब प्रतीक ही है।

रहस्यवाद तथ्य के आलोक का मानसिक परिवर्तन है। ऊपर जैसा कहा गया है, रहस्यवाद के दो व्यवसाय होते हैं—अखंड सत्ता का संपर्क प्राप्त करने के लिये 'वहाँ' तक पहुँचना और नीचे उतरकर अपने अनुभव की अभिव्यंजना करना। कुछ ऐसे रहस्यवादी हैं, जो सारे निगूढ़ रहस्यों की क्रमशील निबंधना का साक्षात्कार करते और उसे ज्यों-की-त्यों व्यक्त करते हैं। कबीर को ऐसा ही रहस्यवादी कहना चाहिए। इस साक्षात्कार की उपलब्धि की तीन अवस्थाएँ हैं—पूर्व-तद्रूप, तद्रूप तथा

आजु भरम हम जाना सोऊ ; जस पियार पिय और न कोऊ।

—जायसी

प्राग्-तद्रूप*। इस स्थल में कबीर के दृष्टांतों से बहुत सहायता ली गई है, अतएव यह अनुचित न होगा, यदि यहाँ यह बतला दिया जाय कि कबीर साहब का रहस्यवाद देशी और विदेशी रहस्यवादों से तीन बातों में भिन्न है। उनकी थोड़ी चर्चा नीचे की जाती है—

१—उपासना के नंगे स्वरूप का कबीर के रहस्यवाद में अभाव है। इसीलिये उनका रहस्यवाद कभी विकृत नहीं हुआ। रहस्यवादी के लिये इसकी आशंका सदैव नहीं है कि कहीं रहस्यमयी भावना का आलंबन भद्दी मूर्ति-पूजा और बेढंगी हुस्नपरस्ती न हो जाय।

२—एकेश्वरवाद का ही विकृत स्वरूप पैग़ंबरवाद है। आत्मा का विनाश जितना इस वाद से होता है, उतना किसी अन्य से नहीं। जायसी इस पैग़ंबरवाद से सूफ़ी होते हुए भी चिपटे रहे। इसीलिये उनके विचार उतने उदार नहीं दिखाई देते हैं, जितने औरों के हैं। कबीर की फटकार ने उनके रहस्यवाद को इस दोष से बचा लिया है।

३—भारतीय वेदांत में परोक्ष-चिंतन का व्यवसाय इतनी सीमा तक पहुँच गया है कि भावपक्ष बिलकुल निर्जीव-सा हो गया था। यह एक बड़ी भारी त्रुटि है। कबीर का रहस्यवाद अधिकतर सरस है, और रागात्मिका वृत्ति को चरम भाव-लोक

---

* तद्रूप होने के प्रयास की आदिम अवस्था से लेकर तद्रूप होने तक की अवस्था को पूर्व-तद्रूप अवस्था कहते हैं। तन्मय हो जाने की अवस्था को तद्रूप अवस्था कहते हैं। तथा तन्मय होने के परे की अवस्था को प्राग्-तद्रूप अवस्था कहते हैं। अँगरेज़ी में Becoming, being तथा more than being से ये ही बातें बताई गई हैं।

तक पहुँचाने की क्षमता रखता है। वह निर्जीव चिंतन-प्रणाली के अनुसरण से बाल बाल बच गया है। यही उसकी विशेषता है।

इसी संबंध में एक बात और समझ लेने की है। नाटक में रहस्यवाद की उद्भावना संसार में कहीं नहीं हुई *। शेक्सपियर आदि नाटककार रहस्यवादी नहीं हैं। रहस्यमयी भावनाएँ दर्शकों के लिये सुबोध नहीं कही जा सकतीं। शेक्सपियर की कृतियों में अध्यात्मवाद की अभिव्यक्ति अवश्य है। अध्यात्मवादी और रहस्यवादी में थोड़ा भेद है। अध्यात्मवादी व्यक्त क्रिया-कलाप और गल्पात्मक स्वरूप-विधान के कारण की खोज में चिंतित रहता है। परंतु रहस्यवादी ऐसा अनुभव करता है कि वह प्रत्येक तथ्य के अंतिम निष्कर्ष को जानता है। हाँ, रहस्यवादियों में भी उपासना-विधान में विभिन्नता हो सकती है, और उपासना के लिंगों में अध्यात्मवाद से साम्य हो सकता है। वर्ड्सवर्थ, हाफ़िज, जायसी, कबीर, मीरा तथा दादू इत्यादि ध्यान और प्रणिधान को महत्त्व देते हैं, और ब्लैक, रवींद्र, माखनलाल, सुमित्रानंदनजी पंत कल्पना के परिष्कार को ही ठीक समझते हैं, परंतु दोनो के चरम आदर्श आभ्यंतरिक शुद्धि में सहायक हैं।

इतिहास की भाँति युग के साथ-साथ किसी क्रम से रहस्यवाद का विकास नहीं हुआ। किसी तार्किक क्रम के कटहरे में रहस्यवाद की किसी स्थिति को बंद करना भी कठिन है। हाँ,

* यह उक्ति आजकल के नाटकों के लिये नहीं है। गत ५० वर्षों से सभी देशों की प्रगति रहस्यवाद की ओर झुकी दिखाई देती है। हिंदी में जयशंकरप्रसाद इस प्रभाव के प्रतिनिधि हैं। पूर्णरूप से उनके रहस्यवादी न होने पर भी उनकी कृतियों में रहस्यमयी भावना की भरमार है।

देश-काल की परिस्थितियों द्वारा स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य हो गया है। हिंदू सिद्धांतानुकूल प्रकृति का आवरण आत्मा को परोक्ष सत्ता के निरूपण में विघ्न उपस्थित करता है, और वह उसके परित्याग की भावना को अत्यंत तीव्रता के साथ व्यक्त करता है। सूफ़ी इस प्रतिरोध को नहीं मानता। सूफ़ी भावना से प्रेरित होकर कबीर ने लिखा है—

मूए पीछे मति मिला, कहै कबीरा राम ;
सोना माटी मिल गया, फिर पारस केहि काम।

कबीर इस मिट्टी को—इस शरीर को—प्रतिबंध न मानकर उसे भी सोना बनाना चाहते हैं। इस महान् सत्ता के संपर्क से जड़ प्रकृति भी चैतन्यमयी हो सकती है। परंतु उसी समय तक, जब तक उसमें स्वयं उस महान् शक्ति का स्फुलिंग उपस्थित है। सारा विश्व एक बृहत् क्रिया-कलरव का गत्यात्मक पिंड है। उसी में अखंड सत्ता का हृदय—जिसे ईश्वर कह सकते हैं।—है, और वही सारे स्वरूपों और नाम-रूपों की जाति, उद्गम और ध्वंस का केंद्र है। इसकी सम्यक् जानकारी अभ्यासी क्रमशः ही उपलब्ध कर सकता है। उसकी उन्नति उतनी ही गति से होगी, जितनी वेगवती उसकी उपास्य-भावना है, और जितना अधिक उसका हृदय परिष्कृत है। उपासना का अभिप्राय स्थूल देववाद की भावना से प्रेरित होकर पूजा इत्यादि करने का नहीं है। स्थूल देववाद और रहस्यवाद का वही विरोध है, जो उसका और ब्रह्मवाद अथवा अद्वैतवाद का है। बहुत-से देवी-देवतों को मानना अथवा उनके बाबा को मानना एक ही बात है। इस दृष्टि से बहु देवोपासना अथवा एकदेवोपासना में सिद्धांतः कोई भेद नहीं है। जिस-जिस धर्म में बहुदेवोपासना अथवा एक देवोपासना की

वृद्धि हुई है, उस-उस धर्म में बुद्धि का ह्रास हुआ है, क्योंकि जिज्ञासा-स्वातंत्र्य के ऐसे धर्म प्रतिकूल हो जाते हैं। यही कारण है कि इस्लाम-धर्म में कोई स्वतंत्र दर्शन-सिद्धांतों का प्रणयन नहीं हुआ।

कट्टर देववादियों के समक्ष अद्वैतवाद एक प्रकार का नास्तिक-वाद है। सूफ़ियों के कार्यों में बिहिश्त को न मानना, बिहिश्त को केवल एक प्रकार की स्थिति-विशेष समझना, "क़यामत के दिन रसूल मुहम्मद साहब बैठकर सबका निर्णय करेंगे।" इस बात की मख़ौल उड़ाना, बुतों के सामने सिजदा करना, कट्टर पैग़ंबरवादी मुसलमानों की दृष्टि से क़ाफ़िरों के ही काम हैं। सूफ़ी लोग कट्टर रहस्यवादी थे। इस्लाम के कट्टर देववाद के प्रतिकूल उन्होंने बहुत-सी कथाएँ प्रचलित कर रक्खी थीं। जैसे, क़यामत के दिन जब मुहम्मद साहब कहेंगे—"ऐ ख़ुदा-वंद! ये लोग कौन हैं, मैं नहीं जानता।' ख़ुदा उस वक़्त कहेगा—"ऐ मुहम्मद! जिनको तुमने पेश किया है, वे तुम्हें जानते हैं, मुझे नहीं जानते; पर ये लोग मुझे जानते हैं, तुम्हें नहीं जानते।" इसी प्रकार वे कट्टर इस्लामियों का मज़ाक़ उड़ाया करते थे। सूफ़ियों और पैग़ंबरी मुसलमानों में घोर संघर्ष हुआ। दोनो अपने-अपने सिद्धांतों पर अधिक दृढ़ हो गए।

भारतवर्ष में अद्वैतवाद केवल चिंतन-जगत् तक ही रहा। इसकी कुछ झलक उपनिषदों में अवश्य मिलती है, वैसे सारा संस्कृत-काव्य-साहित्य रहस्यवाद से दूर है। यह अवश्य है कि देश की सुख-समृद्धि से मनुष्य बाह्यमुखी अवश्य रहता है, परंतु जिस भारतवर्ष में बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने अपनी अंत-र्दृष्टि के पैनेपन से संसार को चकित कर रक्खा है, वह रहस्य-

वाद की अभिव्यक्ति से बचा रहे, यह विचारणीय अवश्य है। यहाँ का सारा संस्कृत-काव्य रहस्यवाद से अधिकतर बचा रहा। भारतीय धर्म में मूर्ति-पूजा की स्थापना करके भावना के लिये एक नई उर्वरा भूमि तैयार की गई। इस में भावों का हृदय टिका। अत्युक्ति और परोक्ष की लपक को स्थान न रहा। सारी भावना प्रतिभा में सम्मिलित कर दी गई। साहित्य के रागात्मक स्वरूप में—काव्य में—वह इसी रूप में स्वीकार किया गया। सारे संस्कृत-कवियों ने, नितांत अर्वाचीन हिंदी-कवियों को छोड़कर, सारे हिंदी-कवियों ने अपनी भावना के विस्तार के लिये भगवान् के साकार स्वरूप को ही आलंबन बनाया। इन अवतारी स्वरूपों पर जनता का हृदय भी टिका। चित्रों की सुंदर-से-सुंदर व्यंजना दिखाई देने लगी। हिंदी-कवियों में—कबीर, जायसी और कहीं-कहीं सूर में—जो रहस्यवाद की झलक यत्र-तत्र दिखाई देती है, वह सूफ़ी मत के प्रभाव के कारण। कहीं-कहीं तो कबीर की हिंदी की अटपटी वाणी कवींद्र रवींद्र के द्वारा अँगरेज़ी में पहुँचाई गई, और वह योरप होती हुई हिंदी के नवीन उन्नायकों द्वारा हिंदी ही में नए संस्करण में उपस्थित की गई।

वर्तमान युग में मनुष्य की रहस्यमयी उद्भावना को अधिक उत्तेजना मिली। इसके कई कारण हैं। इस पुस्तक का विषय उनका विश्लेषण करना नहीं है। अखंड सत्ता की गुह्य शक्ति के प्रति रहस्य-भावना अनुभव करते-करते मनुष्य उस अवस्था तक पहुँच जाता है, जब वह प्रकृति के नाना रूपों में उसी परोक्ष सत्ता का आभास देखता है। पुष्प की सुंदरता में, परमाणुओं की चमक में, बालक के मृदु हास में, कामिनी के चंचल नेत्र में, पृथक्-पृथक् रूप में मनुष्य की रहस्य-

मयी भावना-वृत्ति को अद्वैत भाव से लीन होने के लिये पर्याप्त सामग्री रहती है। सूफ़ियों के लिये तो यह प्रसिद्ध ही है कि वे 'पर्दे-बुतों' में 'नूरे ख़ुदा' देखते हैं, और बुतों के सामने सिजदा करना उतना ही पाक समझते हैं, जितना कि ख़ुदा के सामने। इसीलिये कट्टर सुन्नियों ने सूफ़ियों को क़ाफ़िरों के दल में खदेड़ दिया।

व्यक्त स्वरूप पर अधिक अनुरक्ति ने सूफ़ियों में अंतर्दृष्टि के अभ्यास को मंद कर दिया। वे अधिकतर बाह्य सौंदर्य तक ही सीमित रहे। किसी-किसी परिस्थिति में उनके मनोभाव में विकार उत्पन्न हो गया, और सौंदर्य-बाहुल्य का प्रभाव मनो-मुग्धकारी न रहकर स्थूल इंद्रियों में प्रकंपन उत्पन्न करने लगा। सौंदर्य हृदय में गड़ा तो, परंतु विस्मय परिपाक-स्वरूप गत्या-त्मक महान् अक्षय परोक्ष सौंदर्य आलोक की ओर न ले जाकर मांस-पिंड तक ही सीमित रह गया। इसी से लोग बिगड़े, और बुरी तरह बिगड़े। अमूर्त, गुण, दया, दाक्षिण्य, करुणा आदि के विश्वरूप सौंदर्य तक उनकी पहुँच न हो सकी। मूर्त पदार्थों तक ही उनका मन टिका। करुणा-संपन्न व्यक्ति पर मुग्ध होकर सूफ़ी रहस्य-भावना में लीन हो सकते थे, परंतु करुणा के अमूर्त गुण पर नहीं। हिंदी-साहित्य के वर्त-मान रहस्यवादी कवियों ने किसी अंश तक इस कमी को पूरा किया है। जयशंकर प्रसाद के अजातशत्रु-नामक नाटक में, करुणा की व्याख्या में, कवि किस प्रकार रहस्यवादमय हो जाता है, इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

गोधूली के राग-पटल में स्नेहांचल फहराती है।
स्निग्ध उषा के शुभ्र गगन में हास-विलास दिखाती है;

निर्निमेष ताराओं मे वह ओस-बूँद भर लाती है।
निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से;
मानव का महत्त्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से।

रहस्यवाद का सूफ़ीवाद पर जो बुरा प्रभाव पड़ा, उसी से प्रेरित होकर सूफ़ी लोग अपने कर्तव्य की इतिश्री इसी में समझने लगे कि वे सुंदर स्त्री अथवा सुंदर बालक की ओर आँखें फाड़कर देखें। इसी से वे ऐहिक विलास में पड़ गए, और भारतीय प्रवाह पहले मूर्ति-पूजा की ओर झुका, और अब गुणों के सूक्ष्म सौंदर्य के आलोक में सच्चे रहस्यवाद का चित्र खड़ा कर रहा है।

सूफ़ीवाद में अद्वैतवाद का प्रवेश कैसे हुआ, इसका भी थोड़ा परिज्ञान कर लेने की आवश्यकता है। सूफ़ियों को अद्वैत-वाद की ओर लानेवाले प्रभाव बाहर के थे। ख़लीफ़ा लोगों के युग में कई देशों के विद्वान् बग़दाद और बसरे में आते-जाते थे। भारतीयों का भी संपर्क अरबों से ख़ूब था। आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान के अनुवाद अरबी में हो चुके थे। अरस्तू के सिद्धांतों से अरब लोग परिचित हो चुके थे, और अरस्तू के दार्शनिक अद्वैतवाद की लोगों में बड़ी चर्चा थी। वेदांत-केसरी का गर्जन भी आँखों-कानों तक पहुँच चुका था। मुहम्मद बिनक़ासिम के साथ आए हुए अरब सिंध में रह गए थे। उनकी संतति ब्राह्मणों से बड़े मेल-जोल से रहती थी। उन पर भारतीय संस्कृति का बड़ा प्रभाव पड़ा। इनमें कुछ सूफ़ी भी थे। इन्होंने कुछ दिनों तक अद्वैतवाद की दीक्षा ब्राह्मणों से ग्रहण की। सिंध में आबू प्राणायाम की विधि जानते थे। उन्होंने ही 'फ़ना' की शिक्षा बयाजीत को दी। सूफ़ी-प्रवर दाराशिकोह के 'रिसाल-ए-इकनुमा' में व्यवहृत

'नासूत', 'मलकूत' और 'जबरुक' तथा 'लाहूत' हमारे पारिभाषिक शब्द सत्, चित्, आनंद के पर्यायवाची हैं। दृश्य जगत् मिथ्या है, परंतु उसकी भावनाएँ अनित्य हैं, यही किसी अंश में वेदांत भी मानता है। योरपीय दार्शनिक बार्कले का कथन भी यही है। सूफ़ीवाद में अद्वैतवाद का चिंतन भावना-जगत् में निरूपित किया गया है। 'शरीअत', 'तरीकत', 'हक़ीक़त' और 'मारफ़त' भारतीय व्यवधान में उपासना, कर्म और ज्ञान-मार्ग का रूपांतर हैं। सूफ़ियों में जलालुद्दीन रूमी, हल्लाज और हाफ़िज़ बड़े ऊँचे कवि थे।

मि० निकोलेसन साहब ने सूफ़ीवाद पर एक मार्मिक ग्रंथ लिखा है। उनका कहना है कि आरंभ में सूफ़ीवाद के अनुयायी संत और दरवेश हुआ करते थे। आरंभ में शांति का पाठ इन्होंने ईसाइयों से सीखा। ज्ञानवादियों द्वारा दैवी शक्ति के आभ्यंतरिक ज्ञान की दीक्षा ली, तथा बौद्धों के सकाश से उन्हें माला का प्रयोग आया। सूफ़ियों के चार विधानों के साधन नीचे दिए जाते हैं—

१. यात्रा। २. आलोक और आनंद। ३. ज्ञान।
४. दैवी प्रेम।

सूफ़ियों में दो बातों का स्पष्ट स्वीकार उनके रहस्यवाद में न था। (१) परम सत्ता चित्-स्वरूप है। (२) जगत् अध्यात्म-मात्र है। परंतु मलिक मुहम्मद जायसी ने इसको अपने 'पद्मावत' में काफ़ी स्पष्ट करने का प्रयास किया है—

देखि एक कौतुक हौं रहा, रहा अंतरपट पै नहिं अहा।
सरवर देख एक मैं कोई, रहा पानि पै पानि न होई।
सरग आय धरती पै छावा, रहा धरत पै धरत न पावा।

स्परजन-नामक एक विद्वान् अँगरेज़ लेखक ने रहस्यवाद पर एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें उसने रहस्यवादी कवियों को उनकी चिंतन-प्रणाली के अनुसार कुछ कोटियों में विभाजित किया है। उनकी कुछ चर्चा नीचे दी जाती है —

(१) प्रेम और सौंदर्य-संबंधी रहस्यवादी
(२) दार्शनिक रहस्यवादी
(३) धार्मिक और उपासक रहस्यवादी
(४) प्रकृति-संबंधी रहस्यवादी

पहली कोटि में अँगरेज़ी का प्रसिद्ध कवि शैली आता है। हिंदी के प्राचीन कवियों में जायसी, कबीर और नवीन कवियों में 'भारतीय आत्मा' इस कोटि में आ सकते हैं।

दूसरी कोटि में अँगरेज़ी कवि ब्लैक और कहीं-कहीं ब्राउनिंग हैं। हिंदी में जयशंकर प्रसादजी इस कोटि में आ सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी का 'केशव, कहि न जात का कहिए' विनयपत्रिका का प्रसिद्ध छंद इसी कोटि में आता है।

तीसरी कोटि में मीरा, निर्गुणिक कवि दादू इत्यादि और कहीं-कहीं प्रेमवादी जायसी तथा कुतबन आते हैं। तुलसीदास रहस्यवादी नहीं हैं, परंतु उनका 'सियाराम मैं सब जग जानी' पद इसी कोटि में आता है।

चौथी कोटि में अँगरेज़ी कवि वर्ड्सवर्थ आते हैं। हिंदी के वर्तमान कवियों में सुमित्रानंदनजी पंत के कुछ पद इस कोटि में आ जाते हैं—

देख वसुधा का यौवन - भार—
गूँज उठता है जब मधुयाम।
* * *
सँदेशा कौन भेजता मौन?

फ़ारस और इँगलैंड के रहस्यवाद के इतिहास से एक बात तो स्पष्ट ही है कि जनसत्तात्मक विचारों की क्रांति से बहुधा रहस्यमयी भावना का प्रादुर्भाव होता है। ह्वीट्स साहब आयर्लैंड-निवासी हैं। कबीर समाज के नीच जुलाहे थे। कभी-कभी बाह्य परिस्थितियों की प्रतिकूलता से भी अभ्यंतर-मुख होकर लोग रहस्यवादी हो जाते हैं।

यह बात न भूलना चाहिए कि किसी विशेष 'वाद' में पड़कर कविता अपना महत्त्व खो बैठती है। रहस्यमयी भावना बड़ी सुंदर वस्तु है। कविता में उसकी निबंधना कविता के स्वरूप को अत्यंत आकर्षक बना देती है। परंतु जब वह कविता की शक्ति किसी 'वाद' विशेष के निरूपण में लगाई जाती है, चाहे वह अद्वैतवाद ही क्यों न हो, तो वह कविता न रहकर केवल तुकबंदी ही रह जाती है। कबीर ने ही जहाँ कहीं रहस्यमयी भावना के बिना ही रहस्यवाद के निरूपण के लिये कविता के पद खड़े किए हैं, वहाँ के छंद बिलकुल नीरस हैं। उदाहरण के लिये देखिए—

> जल में कुंभ, कुंभ मे जल है, बाहर - भीतर पानी ;
> फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना यह तत कथौ गियानी।

ऊपर की यह तुकबंदी रहस्यमयी कविता नहीं हुई। हाँ, 'तोकों राम मिलेंगे, घूँघट का पट खोल रे' में रहस्यवाद है। वर्तमान युग की कविता में यद्यपि कबीर की भाँति केवल 'वाद' के निरूपण की कविता में नीरस पद्य संभवतः न मिलेंगे, परंतु ऊटपटाँग चित्रों की भरमार है। इनके बीच में पड़कर सच्चे चित्रों और मार्मिक कवियों को भी लोग संदेह से देखते हैं। 'भारतीय आत्मा' की निम्न-लिखित पंक्तियों में अनूठी रहस्यवादी कल्पना है—

अजब रूप धरकर आए हो, छवि कह दूँ या नाम कहूँ ?
रमण कहूँ या रमणी कह दूँ, रमा कहूँ, या राम कहूँ ?
तीर बने तन चीर रहे हो, सौदामिनि अभिराम कहूँ ?
मोर नचाते, ग्वाल हँसाते, या जलधर घनश्याम कहूँ ?
हृदय-प्रदेश उजाला-सा है, उन्हें चंद्रिका कह दूँ क्या ?
चमको नील नभोमंडल में, बालचंद्र प्यारे आहा ?

भाषा शिथिल अवश्य है, पर व्यक्त से अव्यक्त की ओर की झाँकी अच्छी दिखाई गई है। प्रसादजी एक दार्शनिक वृत्ति के कवि हैं। वह प्रायः रहस्यवादी कवि कहे जा सकते, परंतु उनमें सर्वत्र रहस्यवाद नहीं है। हाँ उनकी चिंतन-शैली दुरूह अवश्य है, और उनके चित्र संश्लिष्ट हैं। उपमाएँ उनका अनूठी और भाव-व्यंजना नितांत नवीन है। सुमित्रानंदनजी पंत अधिकतर विस्मयवाद के रूपक सामने रखते हैं। रहस्य-वादी अधिक न होकर वह 'विस्मयवादी' कहे जा सकते हैं। परंतु कहीं उनकी उपमाओं में और चित्रों के व्यक्त से अव्यक्त की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है—

ओ अकूल की उज्ज्वल लस,
भरी अनल की पुलकित साँस।
महानंद की मृदुल उमंग,
अरे अभय की मंजुल—
मेरे मन की विविध तरंग।
रंगिणि ! सब तेरे ही संग,
एक रूप में मिले अनंग।

पं० रामनरेश त्रिपाठी की निम्न-लिखित पंक्तियों में भी रहस्यवाद की कुछ झलक मिलती है—

कुरूप है किरण मे, सौंदर्य है सुमन मे;
कुप्राण है पवन में, विस्तार है गगन मे।

'नवीन'जी के विप्लव-गान में—

कण-कण में है व्याप्त वही स्वर,
रोम-रोम जाती है वह ध्वनि;
वही तान गाती रहती है—
कालकूटफणि की चिंतामणि।

इत्यादि

'निराला'जी की पंक्तियों में जहाँ कहीं रहस्यवाद लाने का प्रयास किया गया है, वहाँ तुकबंदियों का स्वरूप दिखाई देता है। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि वर्तमान हिंदी के कवियों में रहस्यवादी बहुत कम हैं। समासोक्ति अथवा अन्योक्ति में रहस्यवाद देखना भ्रम है। दुरूहवाद (Mystifying) और रहस्यवाद दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। शुक्लजी ने ठीक कहा है कि काव्य-शक्ति के परिज्ञान के शून्य अभिमानी कवि परोक्ष की ओर झूठा इशारा करके असीम और ससीम का समन्वय कराया करते हैं। चित्रों की विकृति को ही वे रहस्यवाद समझते हैं। कुछ थोड़े-से शब्द हैं, और कुछ थोड़े प्रतीक। बस, उन्हीं का बार-बार उद्धरण उन तुकबंदियों में मिलता है—

वेदना उठती है मन में,
तड़प-सा उठता है ब्रह्मांड;
छनक जब होती है मन में,
नहीं थिर होती है मनुहार।

इस पद्य में न कोई छंद का विचार दिखाई देता है, और न भाव का ही क्रम रहस्यवाद के नाम पर ज्ञात होता है। चित्र कैसा बेढंगा है, और भाषा कैसी है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

हिंदी में रहस्यवाद और 'नवीन'

पंडित अवध उपाध्याय ने एक बार इंदौर में, एक भाषण में, कहा था कि मैं एक समय पंडित सुमित्रानंदन पंत से मिला, और पूछा कि लोग आपको रहस्यवादी कवि कहते हैं, यह सत्य है ? इस पर उन्होंने मुस्किराकर कहा कि लोग चाहे जो कहें, यह तो उनकी इच्छा का विषय है, इसका निराकरण मैं क्या करूँ, मैं तो रहस्यवाद से कोसों दूर हूँ। रहस्यवाद के विषय में आजकल विचित्र धारणाएँ हिंदी-संसार में फैल रही हैं। जो कवि चाहता है, वही रहस्यवादी बन बैठता है। यह ठीक है कि हिंदी-कविता में एक ऐसी नींव डाली जा रही है, जो एक विशेष परिपाटी की परिचायिका और हिंदी के लिये वास्तव में एक नई वस्तु है। रहस्यवादी कविता का प्रधान लक्षण इन दिनों भाव-जटिलता और भाषा-क्लिष्टता है। अभिव्यक्त चित्रों की अस्पष्टता, कला की दुरूहता एवं प्राचीनों की उपेक्षा और उपहास ही इसके मुख्य अंग हैं। यही वर्तमान कवियों और कविताओं की प्रधान मनोवृत्ति है। उपर्युक्त बातें जिन कविताओं में मिलीं, वे एकदम रहस्यवादी मान ली जाती हैं। इन दिनों एक और खास बात यह है कि रहस्यवाद पर जो कुछ लेख निकल रहे हैं, या जो कुछ प्रकाश डाला जा रहा है, वह इतना अस्पष्ट एवं धुँधला है कि वह स्वयं रहस्यवाद बन जाता है। फिर भी रहस्यवाद की डींग खूब ही हाँकी जा रही है। प्राचीन पंडित भी

रहस्यवाद के इस वर्तमान रूप से इस क़दर भय करते तथा चिढ़ते हैं कि वर्तमान रूप की गंदगी तो दूर, वे रहस्यवाद के मूल-रूप को ही कोसने लग गए हैं। यह भय इतना बढ़ गया है कि पंडित रामचंद्र शुक्ल-जैसे धुरंधर मर्मज्ञ एवं सुप्रसिद्ध आलोचक को एक निबंध —'काव्य में रहस्यवाद'—पुस्तकाकार लिखना पड़ा। शुक्लजी निर्मल-बुद्धि समालोचक हैं, और यह धींगाधागी उनसे राष्ट्र-भाषा में देखी नहीं गई, क्योंकि इससे साहित्य बदनाम एवं दूषित होता है, इसीलिये उन्होंने रहस्यवाद का असली स्वरूप कवियों और लेखकों के सम्मुख प्रस्तुत किया कि हिंदी के कवि विपथ पर न चले जायँ। उनका यह विरोध वास्तव में ठीक है, और न्याय-संगत भी। किंतु वर्तमान कवियों ने उनकी काफ़ी निंदा की, और उन्हें गालियाँ भी दी हैं। शुक्लजी का ग्रंथ वास्तव में सराहनीय है। उन्होंने रहस्यवादी भ्रम को क़तई दूर कर दिया है। फिर भी कहना ही पड़ता है कि शुक्लजी ने उक्त ग्रंथ में, जहाँ वर्तमान रहस्यवादियों का वर्णन आया है, पक्षपात की बुद्धि से काम लिया है, और वह प्रतिकूल भावों को सहानुभूति की दृष्टि से देखते चले गए हैं। फिर भी शुक्लजी अनन्यतम साहित्यिक हैं। उनकी बहुज्ञता, मार्मिकता एवं अगाध विद्वत्ता पर कोई उँगली नहीं उठा सकता।

हिंदी रहस्यवाद का वर्तमान स्वरूप पश्चिमीय प्रतिकृति है। रहस्यवाद शब्द अँगरेज़ी के Mysticism शब्द से मिलते-जुलते भाववाला है, किंतु छायावाद-शब्द में रहस्यवाद की पूर्ण व्यंजना नहीं होती। अँगरेज़ी की वेब्स्टर डिक्शनरी में रहस्यवादी का अर्थ बताते हुए लिखा है कि जिसे ज्ञानातीत सत्य के आध्यात्मिक निर्णय में विश्वास हो, वही रहस्यवादी है।

रहस्यवाद के व्यापक स्वरूप के अंतर्गत संसार की बड़ी-से-बड़ी विभूतियाँ और छोटी-से-छोटी शक्तियाँ सम्मिलित हैं। इसलिये संसार के बड़े-से-बड़े व्यक्तियों की कृतियों में रहस्यवाद की छाया रहती है।

मानव-समाज का एकमात्र उद्देश्य है सुख की प्राप्ति का प्रयत्न। यही उसका आदिम व्यवसाय है। चिंताओं का नष्ट हो जाना ही सुख है। ईश्वर और उसकी माया, संसार की क्रियाशीलता का रहस्य, संसार की उत्पत्ति और लय का इति-वृत्त समस्त मानव-समाज को आश्चर्य में डाले हुए है। इस आश्चर्य में विस्मय है, और विस्मय में उद्वेग, तथा उद्वेग में एक प्रकार की अग्नि-सी जाग्रत् रहती है। इसी अग्नि के कारण चित्त अशांत और व्याकुल रहता है। अशांति और व्याकुलता में सुख का ह्रास हो जाता है। इसी अशांति और व्यग्रता को नष्ट करने के उपायों की खोज में समस्त संसार अपनी शक्ति एक ज़माने से खर्च कर रहा है। संसार की इस खोज में मनुष्य ने अपनी समस्त शक्ति व्यय कर दी है, किंतु इस अखंड सत्ता का आज तक कोई निश्चयात्मक पता नहीं लगता। ससीम ज्ञान असीम ज्ञान की खोज का यत्न बहुत दिनों से कर रहा है, किंतु शांति नहीं मिली। अतएव ससीम हृदय असीम हृदय के अन्वेषण में लग गया। बस, यही अन्वेषण रहस्यवाद का मूल उद्गम है। चेतन-जगत् में जो अद्वैत (ब्रह्म) है, वही भावना जगत् में रहस्यवाद हो जाता है। भाव से उत्पन्न तद्रूपशीलता में बड़ी शक्ति और जोश रहता है। इसलिये रहस्यवादी का प्राण रहस्यवाद माना गया है। रहस्यवादी इसी रुचिकर भावना में जितना ज़्यादा निमग्न हो जाता है, उतना ही उसे ज़्यादा आनंद का अनुभव होता है।

काव्य-संबंधी रहस्यवाद के ज्ञान का संबंध हृदय से है। रहस्यवाद को आचार्यों ने तीन दशाओं में सीमित कर दिया है—दैवी भाव, दैवी ज्ञान और दैवी उपासना। काव्यांतर्गत रहस्यवाद का संबंध दैवी भाव से है। वैसे उसका संबंध दैवी ज्ञान तथा दैवी उपासना से भी है। मानसिक विकास द्वारा ज्ञान से भी अनुभव लिया जाता है, और भावातिरेक द्वारा हृदय से भावात्मक ऐक्य भी स्थापित किया जाता है। भावातिरेक द्वारा हृदय से भावात्मक ऐक्य का संबंध सीधा काव्य से है। जहाँ काव्य में दर्शन का समावेश हुआ, वहाँ तो गड़बड़ नहीं हुई, किंतु जहाँ काव्य संपूर्णतः दर्शन ही हो गया, वहाँ वास्तव में सत्यानास हो गया। कबीर साहब ने जहाँ-जहाँ 'दर्शन' को पद्य का चोला पहनाया है, वहीं काव्य में भद्दापन आ गया है।

गीता में जहाँ भगवान् के विराट् रूप की व्याख्या हुई है, वहाँ भी प्रत्यक्ष रहस्यवाद की भावनाएँ लक्षित होती हैं।

अखंड सत्ता की गुप्त शक्ति के प्रति रहस्य-भावना का अनुभव करते-करते मनुष्य एक ऐसी अवस्था में पदार्पण करता है, जिसमें वह प्रकृति के नाना रूपों में उसी सत्ता का आभास पाता है। पुष्पों के सौंदर्य में, पत्तियों के नीहार-कणों में, शिशुओं की भोली मुस्कान में तथा कामिनी के चंचल नेत्रों में पृथक्-पृथक् रूप से मनुष्य की रहस्यमयी भावना-वृत्ति को अद्वैत-भाव में लीन होने के लिये काफ़ी सामग्री रहती है। 'पर्देबुताँ,' 'नाखुदा' का अनुभव सूफ़ियों में प्रसिद्ध है। उन्हें बुतों के समक्ष 'सिजदा' करना उतना ही प्रिय है, जितना खुदा के सामने। यही कारण है कि कट्टर सुन्नी-संप्रदाय ने सूफ़ियों को क़ाफ़िर माना है। सूफ़ियों की अनुरक्ति इस वाक्य-सौंदर्य पर विशेष रही। इस कारण उनकी अंतर्दृष्टि क्षीण हो गई।

कहीं-कहीं इसी कारण उनके विचारों में मनोविकार लक्षित होता है। विशेष सौंदर्य का झुकाव अंतर्मुखी न होने के कारण बाह्य इंद्रियों में प्रकंपन पैदा करने लगा। उनका 'सौंदर्य' हृदय में चुभा तो अवश्य, किंतु वह महान् अक्षय अंतर्मुखी सौंदर्य की ओर न जाकर मांस-पिंड तक ही सीमित रहा। इसी से मनुष्य बिगड़ खड़े हुए। अमूर्त गुण, दया, दाक्षिण्य, करुणा आदि के निःस्वरूप सौंदर्य तक ही उनकी पहुँच न हो सकी। मूर्त पदार्थों तक ही उनका मन टिका, करुणा-संपन्न व्यक्ति पर मुग्ध होकर सूफ़ी कवि रहस्योद्घाटन-भावना में लीन हो सकते थे, किंतु करुणा के अमूर्त गुण पर नहीं। हिंदी के वर्तमान रहस्यवादियों ने प्रायः सूफ़ियों की इसी कमी पर नज़र डाली है, और उसे पूरा करने की चेष्टा भी की है। करुणा की व्याख्या करते हुए बाबू जयशंकर 'प्रसाद' लिखते हैं—

गोधूली के राग पटल में
स्नेहांचल फहराती है;
स्निग्ध उषा के शुभ्र गगन में
हास - विलास दिखाती है।
मुग्ध-मधुर बालक के मुख
पर चंद्र-कांति बरसाती है;
निर्निमेष ताराओं से वह
ओस-बूँद भर लाती है।
निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की
विजित हुई इस करुणा से;
मानव का महत्त्व जगती पर
फैला अरुणा करुणा से।

(अजातशत्रु)

यहाँ कवि करुणा की व्याख्या करते-करते कितना रहस्यमय हो गया है। मूर्त पदार्थों की इस तीव्र आसक्ति ने सूफ़ियों को पतन का रास्ता दिखाया, और उनका एकमात्र उद्देश्य सुंदर स्त्री तथा सुंदर बालक की ओर आँख फाड़-फाड़कर देखना ही हो गया। देखते-देखते वे भोग-विलास में फँस गए, और पूरे तौर से पतन के गड्ढे में गिर गए। इसके विपरीत भारतीय भावना पहले मूर्त पूजा की ओर झुकी, और अब अमूर्त गुणों के सूक्ष्म सौंदर्य के आलोक में सच्चे रहस्यवाद का चित्र खड़ा करने को उद्यत हुई है। अब देखना यह है कि सूफ़ी-वाद में अद्वैत-वाद का प्रवेश कैसे हुआ ? ख़लीफ़ा लोगों के समय में कई देशों के विद्वान् बग़दाद और बसरे में आते-जाते थे। भारतीयों का संपर्क अरबों से भी ख़ूब था। भारतीय शास्त्रों में से आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान आदि का भी अनुवाद अरबी में हो चुका था। अरस्तू के सिद्धांतों से अरब लोग परिचित हो चुके थे, और अरब के दार्शनिक अद्वैत-वाद की लोगों में काफ़ी चर्चा थी। वेदांत की भी अरबों ने काफ़ी चर्चा सुनी थी। मुहम्मद बिन कासिम के साथ आए हुए अरब कुछ सिंध में रह गए थे। उनकी संतान ब्राह्मणों के साथ बड़े मेल-जोल से रहती थी। उन पर भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव पड़ा। उनमें कुछ सूफ़ी भी थे, जिन्होंने कुछ दिनों तक अद्वैत-वाद की दीक्षा विद्वानों से ग्रहण की। सिंध के अरब प्राणायाम-विधि जानते थे। सूफ़ी-प्रवर दारा शिकोह के 'रिसालिए-हक़नुमा' में प्रयुक्त 'नासूत,' 'जब्रूत' और 'लाहुत' हमारे भारतीय 'सत्,' 'चित्' और 'आनंद' के पर्यायवाची हैं। अरबी दर्शन में दृश्य जगत् मिथ्या है, किंतु उसकी भावनाएँ नित्य हैं। यही साधारण-तया वेदांत का मत है। योरपियन दार्शनिक बर्कले का भी यही

मत है। सूफ़ीवाद में अद्वैतवाद का चिंतन भावना-जगत् में निरूपित किया गया है। सूफ़ियों में जलालुद्दीन सूफ़ी हल्लाज बड़े ऊँचे दायरे के कवि हुए। मिस्टर निकोलसन साहब ने सूफ़ीवाद पर एक बड़ा मार्मिक ग्रंथ लिखा है। उनका कथन है कि आरंभ में सूफ़ीवाद के अनुयायी संत और दरवेश हुआ करते थे। सूफ़ियों ने शांति का पाठ ईसाइयों से सीखा। ज्ञान-वादियों द्वारा दैवी शक्ति के आभ्यंतरिक ज्ञान की दीक्षा भी इन्होंने ली। सूफ़ियों के चार विधानों के साधन इस प्रकार हैं—१ माला, २ आलोक और आनंद, ३ ज्ञान, ४ दैवी प्रेम। सूफ़ियों के रहस्यवाद में 'परमसत्ता चित्स्वरूप' है, और 'जगत् अध्यात्म-मात्र'। पर स्पष्ट व्याख्या नहीं। किंतु मलिक मुहम्मद जायसी ने इन बातों को स्पष्ट करने की काफ़ी चेष्टा की है। जैसे—

सरवर एक देख मैं सोई ;
रहा पानि पै पानि न होई।
सरग आप धरती पै धावा ;
रहा धरत पै धरत न आवा।

(पद्मावत)

स्परजन-नामक एक अँगरेज़-विद्वान् हो गए हैं। उन्होंने रहस्य-वाद पर एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें रहस्यवादियों की चिंतन-प्रणाली के अनुसार उन्हें चार भागों में विभक्त किया है—

१—प्रेम और सौंदर्य-संबंधी रहस्यवादी
२—दार्शनिक रहस्यवादी
३—उपासक एवं धार्मिक रहस्यवादी
४—प्रकृति- संबंधी रहस्यवादी

हिंदी के प्राचीन कवियों में कबीर, जायसी तथा नवीन कवियों

में भारतीय आत्मा प्रथम भाग के कवियों के अंतर्गत हैं, और बाबू जयशंकर 'प्रसाद' द्वितीय भाग में। प्राचीनों में तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका के कुछ पद भी इस भाग के अंतर्गत हैं। तृतीय भाग में मीरा, दादू तथा कुछ निर्गुण-संप्रदायी कवि, जायसी के कुछ भाग तथा शेख़ क़ुतबन आदि आ जाते हैं। तुलसीदासजी रहस्यवादी कदापि नहीं, किंतु कहीं-कहीं के पद तथा चौपाई आदि इस विभाग के अंतर्गत आ जाती हैं। चौथे विभाग में पंडित सुमित्रानंदन पंत का एक-आध पद आ जाता है। 'मौन निमंत्रण'-नामक 'पल्लव' की कविता इसी के अंतर्गत आती है।

इँगलैंड और फ़ारस देश के रहस्यवादियों के अध्ययन से पता चलता है कि साधारणतया दो कारणों से लोग रहस्यवादी हो जाते हैं—एक तो बाह्य परिस्थितियों की प्रतिकूलता से अभ्यंतमुख होकर और दूसरे, जनसत्तात्मक विचारों की क्रांति से। ब्रह्म की व्यक्त सत्ता क्रियाशील है। संसार में गत्यात्मक केवल सौंदर्य और मंगल है। यह गति अनंत एवं नित्य है। जो कला-पक्ष में सौंदर्य है, वही धर्म-पक्ष में मंगल। अतएव दोनो एक ही हैं। मानवीय व्यक्त सत्ता का संबंध कविता से है। अव्यक्त से काव्य का संबंध नहीं। यह जगत् भी अभिव्यक्ति है, और कविता भी अभिव्यक्ति; किंतु काव्य अभिव्यक्त की अभिव्यक्ति है। जगत् के चित्र ही स्मरण का विषय हैं। कल्पना इन्हीं के प्रकाश तथा प्रयोग में काम आती है। इसलिये शुक्लजी का यह कहना कि संसार से पृथक् होकर ऊटपटाँग के चित्र रखना काव्यकला के साथ कपट करना है, नितांत सत्य है।

रहस्यमयी भावना वास्तव में बड़ी सुंदर वस्तु है। कविता में उसका प्रयोग तथा उपयोग कविता को सुंदर बना देता है।

किंतु जब कविता किसी विशेष वाद की ओर झुक जाती है, चाहे वह कविता का चिर-संगी अद्वैतवाद ही क्यों न हो, तो फिर वह कविता नहीं, वरन् तुकबंदी रह जाती है। कबीर ने कहां-कहां रहस्य-भावना के बिना ही रहस्यवाद के निरूपण के लिये कविता के पद खड़े किए हैं। वहाँ के छंद बिलकुल नीरस हैं। उदाहरण के लिये देखिए—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है,
बाहर - भीतर पानी ;
फूटा कुंभ; जल जलहिं समाना,
यह तथ कथौ गियानी।

यह रहस्यवाद नहीं हो सकता। रहस्यवाद की परीक्षा में कबीर का यह प्रसिद्ध पद पूरा उतरता है—

"घूँघट के पट खोल, तोहिं राम मिलेंगे।"

वर्तमान कविता में ऊटपटाँग चित्र पचास फ़ी सदी तैयार किए जाते हैं। इसके कारण पाठकों को सच्चे तथा मार्मिक चित्र भी भद्दे नजर आते हैं। लोग 'प्रसाद'जी को रहस्यवादी कवि मानते हैं, किंतु उन्हें रहस्यवादी मानना उनके साथ अन्याय करना है। वह दार्शनिक कवि हैं। वैसे उनके समस्त काव्य में दो-चार जगह रहस्यवाद मिल जाय, तो उन्हें रहस्य-वादी कवि माना नहीं जा सकता। उनकी चिंतन-शैली दुरूह तथा गुँथी हुई है। हाँ, उपमाएँ नवीन और भाव-व्यंजना नितांत अनोखी है। सुमित्रानंदन पंत में भी कहीं-कहीं व्यक्त से अव्यक्त की ओर झुकाव दृष्टिगोचर होता है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी के एक प्रसिद्ध पद में रहस्यवाद की झलक विद्यमान है—

तू रूप है किरण में, सौंदर्य है सुमन में ;
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में ।

(मानसी)

हिंदी-साहित्य में वास्तव में इने-गिने रहस्यवादी हैं । अनोखी शैली की तुकबंदियों को, जो प्रधानतया समासोक्ति तथा अन्योक्ति के उदाहरण-स्वरूप काम में लाई जा सकती हैं, रहस्य-वाद मानना भूल है । रहस्यवाद का कठिनता से कोई संबंध नहीं । इस समय हिंदी में यही भेड़ियाधसान मची हुई है । शुक्लजी के अनुसार वर्तमान कवि काव्य-कला के ज्ञान से शून्य, अभिमान-वश परोक्ष की ओर झूठा इशारा करके असीम और ससीम का संबंध स्थापित करते रहते हैं । चित्रों की दुरूहता और विकृति ही को इन्होंने रहस्यवाद मान लिया है । वर्तमान रहस्यवादी कुछ थोड़े-से शब्द तथा थोड़े-से प्रतीकों के आधार पर महाकवि बनना चाहते हैं, ताज्जुब है । बड़े-बड़े अधिकारी संपादक अपने प्रसिद्ध पत्रों में इन्हें किस प्रकार स्थान दे देते हैं !

हाँ, तो प्राचीन और नवीन प्रणाली के कवियों में वर्णन-भेद भी है । पुराने ढंग के कवि किसी भी वस्तु का वर्णन करते हुए अपने वर्णित विषय को कथा की भाँति लिखते हैं, और नवीन ढंग के कवि वर्णित वस्तु के साथ अपने दुख-सुख को मिला देते हैं । यदि पुराने ढंग का कवि वियोगी हृदय का वर्णन करेगा, तो लिखेगा—

'शंकर' नदी - नद नदीशन के नीरन की
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जाएगी ;
दोनों ध्रुव - छोरन लौं पल में पिघलकर
घूम - घूम धरनी धुरी - सी बढ़ जाएगी ।

झारेंगे अँगारे ये तरनि, तारे, तारापति,
जारेंगे खमंडल में आग मढ़ जाएगी ;
काहू विध विधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जोपै वा वियोगिनी की आह कढ़ि जाएगी ।
(महाकवि 'शंकर')

इस आह से नदी, नद और नदीशों के नीर भाप बनकर आकाश में उड़ जाते हैं, चंद्रमा, सूर्य और तारे अंगारे झारने लग जाते हैं । और तो और, आकाश में भी आग लग जाती है । वियोगिनी की आग प्रलय का भीषण दृश्य उपस्थित कर देती है । किंतु यदि आजकल का कवि विरह की आह का ज़िक्र करेगा, तो ऐसे, जैसे वह स्वयं कोई विरही हो । वह अन्य की विरह-आह का ज़िक्र न करेगा । परत्व के भाव में हमेशा कृत्रिमता आ जाती है, और यही बात प्राचीन कवियों में विशेषतया पाई जाती है । नए ढंग के कवि में स्वयं का प्रकाशन तथा अनुभूति का आधिक्य होने से उसकी मानसिक व्यथा का चित्रण सहृदय पाठकों में करुणा का स्रोत बहा देता है । पुराना कवि पढ़ता है वियोगिनी की भयंकर पीड़ा पर, इसलिये श्रोताओं के दिल में आँसू बह जाने चाहिए, किंतु नहीं, श्रोता तो वाह-वाह करने लगते हैं, आँसू तो किसी के भी नहीं निकलते ।

पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की प्रतिभा चौमुखी है, वह रहस्यवादी हैं, प्रलयवादी हैं, शृंगार के प्रेमी हैं, और राष्ट्र पर मर मिटने के भी इच्छुक हैं, उनमें ग़ज़ब की प्रतिभा है। 'नवीन'जी वियोग से उत्पन्न इसी पीड़ा से छटपटाते हुए लिखते हैं—

अरे ! सुलग जा, ख़ूब सुलग
जा ओ विषाद की ज्वाला !

धुआँ न उठे, दिखाई दे
लौ का तांडव मतवाला ।
आज अग्नि का और तीक्ष्ण
असि का मच जाए खेल ;
खाक उड़े, व्रण फटें,
बुझे मेरा दीपक बे तेल ।
('नवीन')

कवि स्वयं जलने का मजा ले रहा है। प्रेम-पात्र के प्रेम में बेसुध है। वियोग की जलन में उसे प्रिय के दर्शन का अनुभव हो रहा है। उससे वह कसक, दर्द अलग नहीं किए जा सकते। प्रेम-पूर्ण हृदय की अनुभूति से सराबोर राष्ट्र के नव-जीवन-काल में उत्पन्न 'नवीन' के हृदय पर राष्ट्रीय चेतना की रहस्यवादी छाप देखिए—

सावधान ! मेरी वीणा में
चिनगारियाँ आन बैठी हैं ;
टूटी हैं मिज़राबें, युगलां-
गुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं ।
कंठ रुका जाता है, महानाश
का गीत रुद्ध होता है ;
आग लगेगी क्षण में हृत्तल
में अब क्षुब्ध युद्ध होता है ।
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त है
इस ज्वलंत गायन के स्वर से ;
रुद्ध गीत की क्षुब्ध तान
निकली है मेरे अंतरतर से ।

* * *

....

.........शांति ?

मैं कवि हूँ, मेरे जीवन
का मूल - मंत्र है क्रांति ।
ज्यों - ज्यों बढ़ती है मेरे
अंतरतर की आकुल ज्वाला ;
ज्यों - ज्यों पीता हूँ मैं पागल
कर देनेवाला प्याला ।
हृदय - सिंधु मंथन करता है
जब मेरा विषाद का वात ;
जब मेरा अस्तित्व काँप
उठता है सह निर्दय आघात ।
जीवन की रजनी में उठती
है जब मेघों की माला ;
तिमिर अंक में जब कि थिरकती
है चपला अति विकराला ।
उसी समय झंकृत हो उठते
हैं मेरे प्राणों के तार ;
अग्नि-शिखा को पहनाता हूँ
मैं कोमल कुसुमों का हार ।
मेरे गायन में दो लय हैं,
दुहरी गति, दो राग ;
सतत धधकती हुई आग है
मलय मृदुल अनुराग ।
मैं रवि हूँ, पावक हूँ,
शशि हूँ, शीतल-सुमन-सुवास ;

अटल शक्ति है, किंतु निहित है
मुझमें हास - विलास ।
('नवीन')

कवि स्वयं रवि, पावक, शशि आदि में मिल जाता है। वह स्वयं हास-विलास की खानि है। वह सर्वतोमुखी व्यापकता से पूर्ण है। 'नवीन' उच्च कोटि के रहस्यवादी कवि हैं।

'नवीन' को परमात्मा चिरायु करे, यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

छायावाद और रहस्यवाद

मेरी राय में एक गहरी भूल —जो वर्तमान साहित्यिक जगत् में विद्वानों द्वारा भी दुहराई जाती है—छायावाद और रहस्य-वाद में तादात्म्य का संबंध स्थापित करना और उन्हें परस्पर विनिमयात्मक समझना है। एक सुंदर लेख 'माधुरी' के १३वें वर्ष के द्वितीय खंड में 'बालेंदु' के नाम से प्रकाशित हुआ था। शीर्षक था 'हिंदी कविता में छायावाद'। उसमें दोनो का भेद बतलाते हुए यह कहा गया था—"रहस्यवाद का मुख्य ध्येय अध्यात्म जगत् की अनुभूतियों का वर्णन करना है, और छायावाद का उद्देश्य साहित्यिक क्रांति की अवतारणा करके नवयुग के भावों कीस्थापना करना, ..इसीलिये छायावाद और साहित्यिक क्रांति, दोनो ही एक भावना के द्योतक तथा पोषक हैं।" तात्पर्य यह कि रहस्यवाद भी छायावाद भले ही हो, किंतु रहस्यवाद ही छायावाद हो—यह धारणा नितांत भ्रम-मूलक है। छायावाद वर्तमान युग की अनंत भावनाओं का एक प्रति-बिंबित और प्रतिमूर्त रूप है।

श्रीरामचंद्र शुक्ल ने 'काव्य में रहस्यवाद'-नामक प्रबंध में रहस्यवाद की विस्तृत विवेचना की है। और, समालोचना के रुख से कुछ ऐसा ज्ञात होता है कि वह भी छायावाद और रहस्य-वाद की सीमांत रेखा स्पष्ट नहीं देखते। वह एक स्थल पर लिखते हैं—"किसी अगोचर और ज्ञात के प्रेम में आँसुओं की आकाश-गंगा में तैरने, हृदय की नसों का सितार बजाने,

प्रियतम असीम के संग नग्न प्रलय-सा तांडव करने या मुँदे नयन पलकों के भीतर किसी रहस्य का सुखमय चित्र देखने" को कविता कहना कहाँ तक ठीक है! फिर दूसरे स्थल पर उनका विचार है—"जो कोई यह कहे कि अज्ञात और अव्यक्त की अनुभूति से हम मतवाले हो रहे हैं, उसे काव्य-क्षेत्र से निकल मतवालों (सांप्रदायियों) के बीच अपना हाव-भाव और नृत्य दिखाना चाहिए।" मतलब यह कि शुक्लजी के मतानुसार काव्य का आलंबन व्यक्ति जगत् होना चाहिए, अव्यक्त सत्ता की नींव पर सम्प्रदायवाद भले ही खड़ा हो, किंतु काव्य की भित्ति नहीं उठ सकती। कबीर आदि का रहस्यवादी काव्य 'काव्याभास' है, 'विशुद्ध' काव्य नहीं। इसी सिलसिले में उन्होंने 'छायावाद' की भी छीछालेदर की है, और उसे सूफियों के 'प्रतिबिंबवाद' से चलकर योरप के 'प्रतीकवाद' से संसृष्ट होते हुए, वंग-साहित्य का दामन पकड़कर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उतरनेवाला 'विलायती चीजों का मुरब्बा' समझा है।

छायावाद का ऐसा सूक्ष्म विधान (Summary trial) तरुण हृदय को खटकता-सा है। अच्छा होता, यदि आचार्यजी ने वर्तमान छायावादी कवियों की कुछ विशिष्ट आलोचना की होती, किंतु संभवतः यह उन्हें इष्ट न था। 'छायावाद' को समझने के लिये 'छाया' शब्द की व्याख्या और उससे कोई अर्थ निकालना अनावश्यक होगा। यह तो हमारे वर्तमान तरुण हृदय की सहस्रमुखी कवितागत भावनाओं का एक सामूहिक नामकरण है—चाहे यह नाम प्रारंभ में विरोधियों द्वारा व्यंग्य-रूप में ही क्यों न दिया गया हो। इसमें हमारा हास्य ही, रुदन है, मस्ती है, सुस्ती है; स्वतंत्रता की पुकार है, तो परतंत्रता का चीत्कार भी है; आशा का इंद्र-धनुष है, तो निराशा की काली घटाएँ भी;

रूढ़ियों के विरुद्ध विप्लव है, तो बेड़ियों के बंधन का विप्लव भी; प्रेम की उच्छृंखलता भी है, संयतता भी। हमारी भावनाएँ कहीं सूर्य की किरणों के समान स्पष्ट हैं, तो कहीं सुदूर क्षितिज की तरह धुँधली, और कहीं तो अमावस्या की रात्रि के समान, अंधकारमय। छायावाद, मायावाद, हालावाद, प्यालावाद, रहस्यवाद, प्रकटवाद, सभी इसमें शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त सांप्रदायिकता के नाम पर ही किसी काव्य को 'काव्याभास' क़रार देना भी नामुनासिब है। सच पूछा जाय, तो इस कसौटी पर तुलसी और जायसी की कविता—जिसे शुक्लजी ने सर्वोत्कृष्ट काव्यों की कोटि में शुमार किया है—मंद पड़ जायगी। उनका कहना है—'जगत् और जीवन से बाहर' काव्य का पता लगाना अपने को धोखे में डालना है। बात ठीक है। लेकिन यह कैसे स्वीकार कर लिया जाय कि जीवन का अव्यक्त सत्ता से कोई संबंध नहीं। अगर कबीर ने अपने ढंग से अव्यक्त को व्यक्त किया, तो तुलसी ने अपने ढंग से। उत्तरकांड में तो स्पष्ट रूप से उसे अव्यक्त कहा भी है। निर्गुण-सगुण की व्याख्या भी तो सांप्रदायिक है। अतः यदि कबीर सांप्रदायिक है, तो तुलसी भी कम सांप्रदायिक नहीं।

किंतु बात यह है कि सांप्रदायिकता के नाम पर वितंडा ही व्यर्थ है। प्रत्येक मानव-हृदय में धार्मिक भावना भी उसी तरह सार्वभौम रूप से व्याप्त है, जिस तरह प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष आदि की भावनाएँ। अतः यदि प्रमाद के आधार पर सार्वभौम काव्य रचा जा सकता है, तो अव्यक्त सत्ता की खोज करने-वाली धार्मिक भावना के आधार पर क्यों नहीं? मानव-ज्ञान अपूर्ण है, और इसी अपूर्ण ज्ञान के सहारे वह उनागूढ़ आध्या-त्मिक तत्त्वों का मर्मस्थल छूना चाहता है, जो मृगतृष्णा के

समान उससे सदा कोसों आगे भागते चले जाते हैं। किंतु मानव-ज्ञान अपूर्ण होते हुए भी अथक है, और किसी-न-किसी रूप में उन तत्त्वों की अजेय उलझनों को सुलझाने की विफल अथवा अंशतः सफल चेष्टा करेगा ही *, तब अंतर इतना ही होगा कि जहाँ निरी धार्मिक भावना दार्शनिकता-प्रधान और नीरस होगी, वहाँ उसी आधार पर निर्मित कविता भावुकता-प्रधान और सरस होगी। जहाँ एक का संबंध मुख्यतः मस्तिष्क से होगा, वहाँ दूसरी में कल्पना का उत्कर्ष अनिवार्य है। जहाँ एक सांप्रदायिकता की तंग गली से गुज़रेगी, वहाँ दूसरी धार्मिकता की व्यापक और उदार भावना को लिए अपने पंख खोलकर उड़ेगी। निष्कर्ष यह कि धर्मशास्त्र और कविता में प्रतिपाद्य वस्तु का

---

* इस संबंध में 'हरिऔध' की 'हिंदी-भाषा और उसके साहित्य का विकास'-नामक भाषणावली की ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं—

"छायावाद का अनेक अर्थ अपने विचारानुसार लोगों ने किया है। परंतु मेरा विचार है कि जिस तत्त्व का स्पष्टीकरण असंभव है, उसकी व्याप्त छाया को ग्रहण करके उसके विषय में कुछ सोचना, कहना अथवा संकेत करना असंगत नहीं। परमात्मा अचिंतनीय हो, अव्यक्त हो, मन-वचन-अगोचर हो. परंतु उसकी सत्ता कुछ न-कुछ अवश्य है। उसकी यही सत्ता संसार के वस्तु-मात्र में प्रतिबिंबित और विराजमान है। क्या उसके आधार से उसके विषय मे कुछ सोचना-विचारना युक्ति-संगत नहीं? यदि युक्ति-संगत है, तो इस प्रकार की रचनाओं को यदि छायावाद नाम दिया जाय, तो क्या वह विडंबना है?.......आकाश असीम हो, अनंत हो, तो हो, खग-कुल को इन प्रपंचों से क्या काम? वह तो पर खोलेगा, जी-भर उसमें उड़ेगा।"

(पृष्ठ ५८३-५८५)

उतना अंतर नहीं, जितना प्रतिपादन-शैली का। इसीलिये तो वाक्य की 'रसात्मकता' को ही काव्य का विशिष्ट उपादान माना गया है। सांप्रदायिकता का भी रसात्मक प्रतिपादन, मेरी सम्मति में, काव्य की श्रेणी में शामिल हो सकता है। अतएव काव्यगत रहस्यवाद में सांप्रदायिकता भी हो, तो उससे कोई क्षति नहीं।

इस संबंध में यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक रहस्य-वाद सांप्रदायिक ही हो, ऐसी बात नहीं। स्वयं शुक्लजी ने भी शेली की एक कविता का उद्धरण देकर 'स्वाभाविक और सच्ची रहस्य-भावना' के 'माधुर्य' का समर्थन किया है। वह 'माधुर्य', उनके विचार से, तभी तक है, जब तक अव्यक्त सत्ता का 'संकेत'-मात्र हो, 'ब्योरा' नहीं दिया जाय। इस दृष्टिकोण से भी हमारे वर्तमान छायावादी काव्यों के माधुर्य से इनकार नहीं किया जा सकता। जब 'प्रसाद' गाता है—

ले चल वहाँ भुलावा देकर
मेरे नाविक! धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अंबर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे!

उस समय उस रहस्यमय 'नाविक' का संकेत-मात्र है—व्यक्त रूपकों द्वारा अव्यक्त की ओर इशारा-मात्र है। इसमें सांप्रदा-यिकता की बू कहाँ?

अथवा—

एक करुण अभाव में चिर-तृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत-

पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय मे।
कौन तुम मेरे हृदय मे !
(महादेवी वर्मा)

यहाँ 'कौन' द्वारा एक रहस्यमय प्रेम-पात्र के अस्तित्व की ओर संकेत अवश्य किया गया है, पर यह सांप्रदायिकता की संकुचित सीमा से परे है। रवींद्र की 'गीतांजलि' ऐसे ही मधुर संकेतों से भरी पड़ी है, और इस मधुरिमा का पाश्चात्त्य जगत् भी क़ायल हो चुका है।

किंतु रहस्यवाद सांप्रदायिक या असांप्रदायिक रूप से अव्यक्त सत्ता की ओर संकेत करे ही, यह कोई निश्चित सिद्धांत नहीं। अन्य भी प्रकार हैं, जिनसे काव्य में रहस्यमयता का सुखद समन्वय किया जा सकता है। स्वयं कबीर ने कई प्रसंगों में और कई प्रकारों से रहस्यमय शैली का प्रयोग किया है, जो सांप्रदायिकता से सर्वथा दूर हैं।

उदाहरणत:—

(अ) क्या जाणौं उस पीव सूँ कैसी रहसी संग।

अथवा—

कहै 'कबीर' ब्याहि चले हैं पुरिस एक अबिनासी।

यहाँ आत्मा-परमात्मा में दांपत्य प्रेम की भावना है।

(आ) 'उलटबाँसियों' का प्रयोग—

बैल बियाइ, गाइ भइ बाँझ ;
बछरा दूहै॰ तीनिउ साँझ।

यहाँ व्यंजना यह है कि यह दुनिया 'अंधेर-नगरी' है, और मोह-माया के फेर में हम गुमराह हो रहे हैं। ऐसे ही पदों को लक्ष्य में रखकर मसल मशहूर है—

कबीरदास की उलटी बानी ;
बरसै कंबल, भीजै पानी ।

(इ) आश्चर्य-जनक घटनाओं का उल्लेख—

पुहुप बिना एक तरिवर फलिया .
बिन कर तूर बजाय ।
आदि ।*

जायसी ने एक दूसरे ही ढंग से रहस्यमयता का समावेश किया है । सारे कथानक को एक रूपक का रूप देने के अतिरिक्त उसने लौकिक और अलौकिक सृष्टि में बिंब-प्रतिबिंब-भाव दिखलाकर एक रहस्यमय भावना का उद्रेक किया है । यथा—

बरुनि-बान अस ओप है, बेधे रन बन ढाँख ;
सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहिं तन सब पाँख ।

यहाँ वन, वनचरों और पक्षियों तक को 'बरुनि-बान' स बिद्ध सिद्ध किया गया है ।

*　　*　　*

आज की हमारी कविताओं ने तो रहस्यमय उक्तियों का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत कर दिया है । वे केवल परमात्मसत्ता अथवा आध्यात्मिक तत्वों में ही सीमित न रहकर अनंत धाराओं में बह चली हैं । और, ऐसा होना उचित भी है, क्योंकि हमारे लिये हमारा सारा जीवन ही पहेली है । पग पग पर उलझनें हैं । इस सृष्टि में अनगिनत गति विधियाँ हैं, जिनका हमें लेश-मात्र भी परिज्ञान नहीं । हम अपनी किसी भी प्रगति

---

* देखो रामकुमार वर्मा का हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (पृष्ठ १६८-७०)

में नियत कार्य-कारण-संबंध स्थापित नहीं कर सकते। अतः यदि हम अपनी सारी प्रगतियों में रहस्यमयता का सन्निवेश करें, तो इसमें हानि ही क्या ? वर्तमान युग तर्क का ज़माना है। ज़माना है जिज्ञासा का, किंतु ज्यों-ज्यों तर्क अपने पंख फैलाता है, त्यों-त्यों उसे अपने बंधे परों का ख़याल भीषण-तर रूप धारण करता जाता है। हमारा रहस्यवाद इसी मसोस का शब्दमय भावुक अभिव्यंजन है, किंतु सुखद। जब छायावादी कवि अपनी कल्पना की सुनहली तूलिका से अपने दुःख की सीमा को सुख की असीमता में, अपने सांत जगत् को अनंतता के क्षितिज के रूप में चित्रित करने बैठता है, तो मानो उसमें विश्व के रहस्य के प्रत्यक्षी-करण की एक अद्भुत शक्ति आ जाती है, प्रकृति उसके अंतस्तल के अज्ञात और अज्ञेय भावों में भी प्रस्पंदन पैदा करने में समर्थ होती है; उसकी सोई हुई वीणा के तार में झंकार का सृजन करने में सफल होती है। प्लेटो ने नक्षत्रों का संगीत (Music o spheres) अपने कानों सुना था। रवींद्र की भी कामना है—

> अरण्येर, पर्वतेर, समुद्रेर गान
> झटिकार वज्रगीत स्वर
> शुनिबे रे आँखि मूँदि विश्वेर संगीत
> तोरे मुखे केमन शुनाय।

पंत की भावना में—

> न-जाने नक्षत्रों से कौन
> निमंत्रण देता मुझको मौन !

निमंत्रण और सो भी मौन !

छायावादी कवि जब नारी-रूप की ओर निहारता है, तो उसकी वृत्ति अंतमुखी होती है। वह बाह्य सौंदर्य का पिपासु न होकर अंत:सौंदर्य का उपासक हो जाता है। यदि उसे बिहारी के समान केवल 'तिय-लिलार की 'बेंदा' अथवा सद्य:स्नाता के 'कुच आँचर बिच बाँह' की ही सुंदरता आँकनी होती, तो कोई बात न थी; किंतु उसे तो उसके हृदय की टोह लेना है, और इसी कारण उसका चित्र सूक्ष्म और रहस्यमय हो जाता है। देखिए, पंत का नारी-रूप कितना अरूप-सा हो गया है—

> स्वप्नमयि ! हे मायामयि !
> तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औ' हास,
> सृष्टि के उर की साँस,
> तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
> तुम्हीं स्वर्गिक आभास,
> तुम्हारी सेवा में अनजान
> हृदय है मेरा अन्तर्धान।
> देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !

सचमुच यह कल्पना की रानी स्वप्नमयी और मायामयी है!

छायावादी कविताओं में कल्पना कभी इतनी ऊँची उड़ जाती है कि उसे चक्कर-सा आने लगता है। इसका ज्वलंत प्रमाण हमें मिलेगा उन शीर्षकों में, जिन्हें हम काव्य अथवा गद्य-काव्य के भी वर्तमान ग्रंथों में पाते हैं। यथा—

निर्गुण वीणा।
अनुराग-विराग।
अस्थायित्व में स्थायित्व।
निरुद्देश-निर्माण की सफलता।
संताप की शीतलता।

अभाव में आविर्भाव। *

परस्पर विरोधी भावनाओं का सुखद समन्वय छायावादी रहस्यवाद का एक विशिष्ट निदर्शन है। 'हरिऔध' के शब्दों में—"छायावादी कवियों की नीरवता में राग है, उनके अंधकार में अलौकिक आलोक और उनकी निराशा में अद्भुत आशा का संचार। वे ससीम में असीम को देखते हैं। बिंदु में समुद्र की कल्पना करते हैं, और आकाश में उड़ने के लिये अपने विचारों को पर लगा देते हैं †।" सच पूछिए, तो इसी में तो रहस्य है, और रहस्य ही में तो आनंद का अमंद निष्पंद। मुस्कान में हास्य से अधिक रमणीयता क्यों है? कली में उत्फुल्ल गुलाब से अधिक आकर्षण क्यों है? चूँकि हास्य स्पष्ट है, मुस्कान रहस्य-मय; गुलाब अपने सारे वैभव को खुले-आम लुटा रहा है, कली अपने अनंत भविष्य को पहलू में दबाए बैठी है। जहाँ जिह्वा नहीं काम देती, वहाँ आँख क्यों समर्थ होती है? क्योंकि आँख की भाषा अनंत काल तक समझी जाय, तो भी पूर्णरूपेण नहीं समझी जा सकती। उपनिषद् ने कहा है—'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'—सत्य का मुँह सुनहले ढक्कन से बंद रहा करता है। अथवा दूसरे शब्दों में सत्य जब गुप्त रहता है, अस्पष्ट रहता है, रहता है रहस्यमय और छायामय, तब वह विचित्र स्वर्णिम छटा छिटकाता है। कवि वर्ड्सवर्थ का 'कोकिल' इसलिये मनोरम है कि वह न-जाने कहाँ विलीन होकर अपना मधुर संगीत सुनाया करता है, जिससे उसे एक 'कोकिल' न कहकर केवल एक 'तान' या 'गान' कहना पड़ता है। उसकी

---

* ये शीर्षक राय कृष्णदास की 'साधना' से लिए गए हैं।

† हिंदी-भाषा और उसके साहित्य का विकास (पृष्ठ ४१२)

विलीनता में ही उसकी समीचीनता है। प्रकृति हमें इसी कारण प्यारी है कि वह न्यारी है। उसे हम पूरी-पूरी जान नहीं पाते। इस अर्थ में हम रहस्यवाद को 'अज्ञेयवाद' भी कह सकते हैं, और इसमें वही प्रगतिशील लुभाव है, जो किसी सौंदर्य के जानने की उत्कट अभिलाषा और चेष्टा होते हुए भी उसे पूर्ण रूप से न जान सकने में हुआ करता है।

हम स्वीकार करते हैं कि 'रहस्यवाद' या 'छायावाद' के नाम पर अनर्थ भी कम नहीं हुए हैं। बालकृष्ण राव ने कुछ साल पहले छायावाद को 'प्रमाद का प्रसाद-रूप' बतलाते हुए ये व्यंग्य कहे थे—

रहते बजाते टूटे तारों की विपंची सदा,
 शून्य में भी नित्य वहाँ होता एक नाद है;
बहते अनंत अंतरिक्ष-ओर नित्य प्रति,
 रहता सदैव मूक वाणी का प्रमाद है।
करुण बिहाग का सुनाई देता राग सदा,
 रहती अतीत स्मृति एक-एक याद है;
यही है प्रमाद का प्रसाद-रूप 'छायावाद',
 प्रतिभा सुकवियों की जहाँ अपवाद है।

और, एक 'प्रकटवादी' समालोचक के निम्न-लिखित कथन में सत्य का कुछ अंश अवश्य है—"परंतु एक दल ऐसे ढोंगी कवियों का है, जो समझते हैं कि उन्हें ही परमात्मा ने उपयुक्त पात्र समझ विश्व का पिटारा सौंप दिया है। ऐसे 'छायावादी' कवि (Mystic poets) अपनी हृत्तंत्री झंकृत करते हुए बड़े वेग से किसी विचित्र सत्य की खोज में 'अनंत की ओर' दौड़ते हैं; कुरंग की भाँति कस्तूरी की खोज में वे दिन-रात परेशान रहते हैं; फिर भी उन्हें भास नहीं होता कि सत्य उनमें ही है;

शब्दाडंबर में नहीं। प्राय: वे ऐसी लाइनें लिखते हैं, जिनकी व्याख्या कदाचित् वे स्वयं न कर सकें*।" माना कि ऐसी लाइनें भी हैं। किंतु इन्हा अत्याचारों और उच्छृंखलताओं के कारण सारे छायावाद अथवा रहस्यवाद के साहित्य को ग़ैर क़ानूनी क़रार देना शायद उन अत्याचारों से भी बड़ा अत्याचार होगा। यदि हम कहा-कहीं रहस्यमय भावनाएँ न समझें, तो मैथ्यू आरनॉल्ड के शब्दों में हम कवि को यों संबोधित कर सकते हैं—

हम जिज्ञासा पर जिज्ञासा
करते हैं, पर तू है मौन!
परे ज्ञान सीमा के! †

किंतु उसे 'अदृश्य' की श्रेणी में बिठाने का दुस्साहस न करें।

---

* नवंबर, १६३१ की 'माधुरी' में प्रकाशित श्रीभगवतशरण उपाध्याय के 'काव्य और कवि'-शीर्षक लेख से उद्धृत।

† We ask and ask.
But thou art still
Out-topping knowledge.

—Matthew Arnold

छायावाद में प्रकृति-चित्रण

यद्यपि 'रहस्यवाद' या 'छायावाद' (Mysticism) उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी कविता, तथापि इस नाम का नए सिरे से, नए रूप में और नए वातावरण में प्रचार होने से इसके साथ नूतनता का अव्यभिचारी साहचर्य-सा हो गया है। और, इसमें संदेह नहीं कि हमारी नवीन रहस्यवाद की कवि-ताओं पर पश्चिमीय शेली, कीट्स आदि रहस्यवादी कवियों की भावनाओं की प्रत्यक्ष छाप लगी है। किंतु इसमें भी संदेह नहीं कि कवींद्र रवींद्र की अप्रतिम प्रतिभा ने अपने तथा अपने देश और समाज के विलक्षण वातावरण में उन भावनाओं को इस प्रकार रँग दिया कि वे अब हमारी मौलिक संपत्ति हो चुकी हैं। उसी प्रकार हिंदी में भी ऐसे मौलिक रहस्यवादी कवियों का क्रमशः संतोष-जनक विकास हो रहा है, जो अपनी कृतियों और मनोवृत्तियों द्वारा एक अपूर्व युग का सृजन करने में अग्रसर हो रहे हैं।

रहस्यवाद को दो विस्तृत विभागों में देखा जा सकता है—

(१) दार्शनिक रहस्यवाद

(२) कवि-सम्मत

(१) दार्शनिक रहस्यवाद की व्याख्या यों की जा सकती है—

रहस्यवाद "विचार-धारा अथवा संभवतः भावना का वह प्रकार है, जो स्वभावतः किसी निश्चित परिभाषा के अयोग्य-सा ही हो। इसका आविर्भाव उस दशा में होता है, जब मानव-मस्तिष्क पर-

आत्मतत्त्व अथवा पदार्थों की चरम सत्यता का ग्रहण करने एवं उस परम सत्ता से संपर्क का आनंद लूटने की चेष्टाएँ करता है *।" ऐसी चेष्टाओं ने भारत में मुख्यत: निम्न-लिखित रहस्यवादी सिद्धांतों को जन्म दिया —

(क) बौद्ध शून्यवाद (Nihilism)

(ख) ब्राह्मणीय सर्वात्मवाद (Pantheism)

फ़ारस का सूफ़ी मत (Sufism) भी आध्यात्मिक रहस्यवाद के अंतर्गत आता है, और हाफ़िज़ तथा सादी कवियों ने अपनी कविता में इसे समाविष्ट किया है। पश्चिम में, ग्रीस में, ईसा की पहली दो-तीन शताब्दियों में रहस्यवाद ने फलने-फूलने के लिये उचित क्षेत्र पाया था, और नव-प्लतुवाद (Neo-Platomism)—जिसके प्रचारकों में प्लॉटिनस प्रधान था—ने इसे अपनाया था। मध्ययुग में भी योरप में सेंट बर्नार्ड आदि दार्शनिकों ने रहस्यमय भावनाओं की शरण ली थी। देखिए उसकी विचार-धारा—"अपने को किसी प्रकार खो देना, मानो तुम रह ही न जाओ, और तुम्हारी अपनी चेतना का बिलकुल लुप्त हो जाना—अपने में से आप खाली हो जाना, नहीं हो जाना—यह है भगवान् के साथ संलाप। इस प्रकार प्रभावित होना क्या है, मानो भगवान् के साथ एक हो जाना।......सो उस परम पावन

---

* देखिए Encyclopædia Britannica—"'Mysticism' a phase of thought, or rather perhaps of feeling, which from its very nature is hardly susceptible of exact definition. It appears in connection with the endeavour of the human mind to grasp the divine essence or the ultimate reality of things and to enjoy the blessedness of actual communion with the Highest."

परमात्मा के प्रति सारी भावनाओं का अपने में ही एक अवर्णनीय रूप में विलीन हो जाना अनिवार्य है, जिसमें वे सर्वतोभावेन परमात्मा की ही इच्छा में परिणत हो जायँ।" इत्यादि *

भाव-भेद और प्रगति-भेद से रहस्यवादियों के चार प्रकार माने गए हैं—

(क) भक्ति-उपासक (Devotional mystics)

(ख) तार्किक (Rational mystics)

(ग) प्रकृति-उपासक (Nature mystics)

(घ) प्रेमोपासक (Love mystics)†

(२) किंतु दार्शनिक रहस्यवाद की चर्चा हमारे लिये विषयांतर होगी, अतः कवि-सम्मत रहस्यवाद के रहस्य का उद्घाटन ही हमारा ध्येय होगा।

हिंदी में आदिम रहस्यवादी कवि हुआ है कबीर; यद्यपि

---

* St. Bernard:—

" To lose thyself in some sort as if thou wert not, and to have no consciousness of thyself at all. to be emptied of thyself and almost annihilated—such is heavenly conversation...So to be affected is to become God ......So must all human feelings towards the Holy One be self-dissolved in unspeakable wise and wholly transfused into the will of God."

— De Diligendo Deo C. 10.

† देखिए 'परिषन्निबंधावली' में सोमनाथ गुप्त का लेख 'कबीर-सिद्धांत और रहस्यवाद' पर। उन्होंने जिसे दार्शनिक (Philosophical mystic) कहा है, उसे हमने तार्किक (Rational) कहना उचित समझा है।

कबीर के रहस्यवाद और अब के रहस्यवाद में एक अंतर है। कबीर का रहस्यवाद संतोषमय है, हमारा असंतोषमय। कबीर ने भौतिकता पर लात मारकर काल्पनिक रहस्यमयता का आश्रय लिया था, हम भौतिकता की असफल कामना से हार मानकर, लाचारी काल्पनिकता का आश्रय लेकर उससे 'खट्टे अंगूर कौन खाय'वाली बेबसी की संतुष्टि धारण करने की कोशिश करते हैं। यही बात कीट्स और शेली के संबंध में थी। दोनो के जीवन दुःखद थे; असंतोष-पूर्ण थे। वही नवयुवक कीट्स, जो एक दिन 'वासनाजन्य जीवन' के सम्मुख 'विचारमय जीवन' * का तिरस्कार करता था, जिसका धर्म था सांसारिक प्रेम, और सांसारिक प्रेम ही जिसका कर्म† था। वही, वही छब्बीस वर्ष का नवयुवक कीट्स आज मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ असंतोष की विषम ज्वाला में जलता है, और उस घड़ी की कल्पना करता है, "जब प्रेम और ख्याति अनस्तित्व में विलुप्त हो जाती है ‡।" आह! कितना भीषण असंतोष! कितनी दर्दनाक कसक! शेली! जब तूने यह गाया था—

मधुरतम वे ही हमारे गान हैं;
विधुरतम जिनमें भरे अरमान हैं𝒥।

* "O, for a life of sensations rather than of thoughts."

† "Love is my religion ......my creed is love."

‡ "Till love and fame to nothingness do sink."

𝒥 "Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts" का अनुवाद लेखक द्वारा।

तब क्या तूने अपने बेबस कलेजे को फुसलाने की कोशिश न की थी? मनुष्य एक विचित्र पहेली है, प्रकृति से ही वह शांति-प्रिय है, किंतु प्रकृति से ही वह इतना स मित है कि उसे सच्ची शांति प्रायः मिलती ही नहीं। उसकी भौतिकता उसकी काल्पनिकता का बड़े वेग से पीछा करती है, किंतु कभी पार नहीं पाती। पर मनुष्य हार भी मानना नहीं चाहता, अतः अपनी भौतिकता की सीमा को काल्पनिक निःसीमता के रूप में, उसकी सांतता को काल्पनिक अनंतता के रूप में, परिणत करना चाहता है, और इस प्रकार वह उस शांति को पाना चाहता है, जिसकी खोज उसकी प्रकृति का एक अनिवार्य अंग है। इस चेष्टा में सफलता-पूर्वक मनुष्य जिस काव्यमय भावना-संसार का निर्माण करता है, उसका रहस्यमय होना निश्चित है, क्योंकि वह निरा भौतिक और निरा काल्पनिक न होते हुए भी दोनों का अपूर्व समन्वय है ही।

(ख) इस अपूर्व रहस्यमय समन्वय का एक व्यापक निदर्शन है प्रकृति में प्रेयसी का आरोप अथवा मानव और मानवेतर जीवन में तादात्म्य भावना। जिस समय कवि गाता है—

निर्झर सरिता मे जा मिलते,
    सरिताएँ जा सागर मे ;
गगन पवन मिलते हैं भरकर
    मधुर भावना अंतर में।
कोई नहीं विश्व मे विरही,
    सभी बँधे दैवी क्रम से ;

मिलते - जुलते सम भावों मे ,
क्या न मिलूँ मैं भी तुमसे ? *

उस समय वह प्रकृति के पदार्थों में मानवीय आवेगों का अध्यारोप करता है, अर्थात् मानव-जीवन मानवेतर जीवन में तादात्म्य की कल्पना करता है। इसी प्रकार पंत की—

खैंच एचीला - भ्रू - सुरचाप—
शैल की सुधि यों बारंबार—
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झुला झरना का झलमल हार;
जलद पट से दिखला मुख चंद्र
पलक पल-पल चपला के मार,
भग्न उर पर भूधर-सा हाय !
सुमुखि ! धर देती है साकार !

इन पंक्तियों में प्रकृति-सुंदरी में 'सुमुखी' का रूप देखा गया है; प्रकृति-सुंदरी की सत्ता में सुमुखी की सत्ता विलीन हो चुकी है। देखिए श्रीमती महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ—

---

* The Fountains mingle with the River
And the Rivers with the Ocean.
The Winds of Heaven mix for ever
With a sweet emotion;
Nothing in the world is single;
All things by a law divine,
In one spirit meet and mingle;
Why not I, with thine ?

—Shelly.

(हिंदी-अनुवाद लेखक द्वारा)

तारकमय नव - वेणी - बंधन ;
शीशफूल कर शशि का नूतन ;
रश्मि - वलय सित घन-अवगुंठन ;
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ वसंत - रजनी !

जिनमें 'वसंत-रजनी' में उन्हीं आभरणों का भान किया गया है, जिनसे हम किसी रमणी को सजाते हैं ।

प्रकृति में प्रेयसी का आरोप अनादि काल से, अर्थात् जब से कविता है, तब से, होता चला आया है; किंतु फिर भी इस तरह के सभी आरोपों को हम छायावाद या रहस्यवाद में न परिगणित करेंगे । और, इसके विश्लेषण के उद्देश्य से कविता की विशिष्ट प्रगतियों को निम्न-लिखित 'वादों' में विभक्त करेंगे, और प्रत्येक की आलोचना करने का प्रयत्न करेंगे । वे ये हैं—

१ वस्तुवाद
२ चित्रवाद } अथवा केवल वस्तुवाद (१)

३ बिंबवाद
४ छायावाद } अथवा केवल छायावाद (२) *

वस्तु होती है ठोस, और होती है उसमें लंबाई, चौड़ाई, गहराई तीनो, किंतु चित्र में लंबाई, चौड़ाई तो होती है, गहराई नहीं होती, फिर भी चित्र वस्तु की नक़ल हुआ करता है । और,

---

* इस विभाग का आधार श्रीयुत सत्यप्रकाश के 'प्रतिबिंब' की भूमिका है, यद्यपि आलोचना में मतभेद संभव है ।

चित्र में उसी स्थूलता की प्रतीति की जाती है, जो वस्तु में विद्यमान होती है। वस्तु और चित्र में इयत्ता का भेद है, किंतु ईदृक्ता का नहीं। अतः वस्तुवाद और चित्रवाद, इन दोनो को हम वस्तुवाद में ही समाविष्ट करना उचित समझते हैं। स्थूल पदार्थों का स्थूल रूप से चित्रण वस्तुवाद कहा जायगा। और, इसके उदाहरण हमारी प्राचीन प्रायः सभी कविताएँ हैं। यथा सूर का बाल-रूप-वर्णन—

जसुमति मन अभिलाषु करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै,
कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दंत दूध के देखौं,
कब तुतरे मुख बैन झरैं।
कब नंदहिं कहि बाबा बोलै,
कब जननी कहि मोहिं ररै।

जिसमें स्थूल बाल-रूप का स्थूल और स्पष्ट चित्रण किया गया है। * ऐसे ही हैं तुलसी के पावस-वर्णन अथवा भारतेंदु के

---

* इस वर्णन के साथ रवींद्र के शिशु का वर्णन मिलाइए, और देखिए, रवींद्र का शिशु कितना रहस्यप्रिय और रहस्यमय है, अपने दादा (बड़े भाई) से कितना अधिक चतुर और तत्त्वज्ञ है—

सुने दादा हेसे केनो
बोल ले आमाय "खोका
तोर मतो आर देखी नाइ तो बोका।
चाँद जे थाके अनेक दूरे
केमन करे छुंइ।"
आमी बोलि—"दादा, तुमी
जानो ना किच्छुइ

तरणि-तनूजा अथवा जाह्नवी के वर्णन। इस वस्तुवाद की कविता में भी प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप होता है, और होता चला आ रहा है। किंतु उसे हम छायावाद नहीं कहेंगे, क्योंकि वह आरोप उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों और वाग्वैचित्र्यों का परिणाम है। उस आरोप में इतनी ताक़त नहीं कि मानव और मानवेतर जगत् में अभेद स्थापित कर सके, क्योंकि कवि की कल्पना रमणी के सौंदर्य को तिरस्कृत करके प्रकृति के सौंदर्य की उपासना नहीं कर सकी थी, रमणी को सिंहासनच्युत करके प्रकृति को सिंहासनासीन करने में असमर्थ थी। इसमें संदेह नहीं कि जिस समय कालिदास कहते हैं—"यदि पशुओं में लज्जा होती, तो पार्वती के केश-पाश को देखकर चमरी गौएँ अपने बालों से प्रेम करना छोड़ देतीं*।" उस समय वह मानवेतर हृदय में मानव-आवेग-लज्जा का आरोप करते हैं। किंतु फिर भी हम इस कविता को वस्तुवाद की श्रेणी से ऊपर उठने नहीं दे सकते। इस आरोप में स्थूलता है, स्पष्टता है, लेश-मात्र भी रहस्यमयता नहीं। आलंकारिकता है, कृत्रिमता है, किंतु अभेद की प्राकृतिकता नहीं। इसी श्रेणी में हम विद्यापति

मा आमादेर हासे जखन
बइ जानलार फाँके,
तखन तुमि बोलवे कि मा
अनेक दूरे थाके ?"
तबू दादा बोले आमाय—"खोका,
तोर मतो आर देखी नाई तो बोका।"

* लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः ;
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युः बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः।

की वह कविता रक्खेंगे, जिसमें उसने मालती और मधुकर में प्रेयसी और प्रियतम का भान किया है—

मालति ! सफल जीवन तोर ।
तोर विरहे भुवन भम्मए
भेल मधुकर मोर । मालति....!

इसके विपरीत कबीर की ये रहस्यमय उक्तियाँ देखिए, जिनमें आधुनिक भाषा में मानव-जीवन की गूढ़ता की ओर संकेत किया गया है—

काहे री नलिनी ! तू कुम्हिलानी ;
तेरी ही नालि सरोवर पानी ।
जल में उतपति, जल में वास ;
जल में नलिनी ! तोर निवास ।
ना तलि तपति, न ऊपर आगि ;
तोर हेत कहु कासनि लागि ।
कहै कबीर जे उदिक समान ;
ते नहीं मूए हमरे जान ।

कविता को वस्तुवाद के समतल से ऊपर उठकर 'छायावाद' के व्योम-वितान में विचरण करने के लिये रहस्यमयी कल्पना के पंखों पर उड़ना आवश्यक है । और, तभी वह शेली के शब्दों में "अपनी रहस्यमयता के कारण प्रिय एवं प्रियतर हो सकेगी ।" *

यथा कवींद्र रवींद्र की निम्न-लिखित पंक्तियाँ—

प्रभाते गाहिबि, प्रदोषे जाहिबि,
निशिथे गाहिबि गान,
देखिया फुलेर नगन माधुरी...

* "Dear and yet dearer for its mystery",
—Shelly

जिनमें कवि फूल की नग्न माधुरी और उद्दाम सौंदर्य देख-देखकर गाते-गाते नहीं अघाता।

अथवा निम्न-लिखित—

खेला छले काछे आसिया लहरी
चकिति चुमिया पलाए जावे,
शरम-विमला कुसुम रमणी
फिरावे आनन शिहरि अमनी
आवेशेते, शेपे अवश होइया
खसिया पड़िया जावे।

जिनमें कुसुम-रमणी की लज्जा, उसकी सिहर और उसका म्लान होकर पतन एवं अवसान इस कला-वैचित्र्य से वर्णित है, जिससे हम कुसुम और रमणी के भेद का भान कर ही नहीं पाते। कवि की प्रतिभा ने अपने जादू के डंडे से छूकर कुसुम को रमणी बना डाला, और इतनी खूबसूरती से कि हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। देखते हुए भी विभोर हो जाते हैं, समझते हुए भी ठिठक-से जाते हैं; हमारा अलंकारों का ज्ञान काम नहीं आता। यही रहस्यमयता इस कविता की विशेषता है "छायावाद की कविताएँ व्यंजना और ध्वनि-प्रधान होती हैं*।" और इसी के बल पर वह वस्तुवाद की संकुचित परिधि से निकल छायावाद के विस्तृत व्योम में विहार करने लग गई हैं।

यहाँ हम यह उचित समझते हैं कि जिस प्रकार वस्तु और चित्र का अंतर दिखलाया गया है, उसी प्रकार बिंब और छाय में भी दिखलाया जाय। जब मानव-हृदय पर मानवेतर प्रकृति प्रति-

---

* 'हरिऔध'—'हिंदी-भाषा और उसके साहित्य का विकास' (पृष्ठ ५९) से।

फलित हो, तो वह प्रतिफलन बिंब (reflection) होगा, और इसके विपरीत जब मानवेतर प्रकृति पर मानव-मनोवृत्ति प्रतिफलित हो, तो वह प्रतिफलन छाया (shadow) होगी। प्रथम अर्थात् बिंबवाद का उदाहरण, जिसमें मानव-हृदय आधार हो, और मानवेतर प्रकृति आधेय—

पत्ते मे मै पत्ती बनकर
कभी - कभी था लहराता ;
फूलों की फिर पँखुड़ी होकर
कभी-कभी हँसता जाता।
किंजल्कों मे बैठ, प्रमुद हो
करता अपना ही दर्शन ;
कहीं बैठता, कही सोचता,
करता सिद्ध कही साधन।
विश्व - विजय करने के हित मैं
विश्व राग मन से गाता ;
विश्व रूप मेरा धारण कर
मेरे सम्मुख आ जाना—
मेरे भावो का मुझमे ही
प्रतिबिंबित होकर आना ;
मैं - ही दर्पण, दृश्य-ज्योति मैं,
दर्शक मेरा बन जाना *।

इत्यादि

द्वितीय अर्थात् छायायाद का उदाहरण, जिसमें प्रकृति आधार हो, और मानव-मनोवृत्ति आधेय—

---

* श्रीसत्यप्रकाश के 'प्रतिबिंब' में 'आत्मदर्शन'-शीर्षक कविता से उद्धृत।

कैसी अखंड यह चिर-समाधि
यतिवर ! यह कैसा अमर ध्यान ?
तू महा शून्य मे खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान ?
उलझन का कैसा विषम जाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल * !
('दिनकर')

उपर्युक्त पंक्तियों में 'हिमालय' में यतिवर-हृदय का आरोप किया गया है। अथवा रवींद्र की ये पंक्तियाँ—

तारि मुख देखे-देख आंधार हासिते सेखे
तारि मुख चेये-चेये करे निशि अवसान
सिहरि उठे रे वारि दोले रे दोले रे प्रान

जिनमें अंधकार हमारे ही समान हँसना सीखता है, और सलिल सिहर उठता है। अथवा पंत की उक्ति छाया के प्रति—

कौन-कौन तुम परिहत - वासना,
म्लान - मना, भू - पतिता - सी ?
धूलि - धूसरित, मुक्त - कुंतला
किसके चरणों की दासी ?
अहा ! अभागिन हो तुम मुझ-सी
सजनि ! ध्यान मे अब आया,
तुम इस तरुवर की छाया हो।
मैं उनके पद की छाया† ।

---

* 'दिनकर' का इस 'यतिवर' हिमालय की कल्पना की समानांतर कवींद्र रवींद्र की वह कल्पना स्मरण आती है, जिसमें उसने लिखा है—"पाहाड़ बोशे आछे महामुनि ।"

† पंत—'वीणा' से ।